॥ राधास्वामी दयाल की दया राधास्वामी सहाय ॥

पोथी

सारबचन राधास्वामी

नसर यानी बार्तिक

जिसको कि

परम पुरुष पूरन धनी स्वामीजी महाराज ने
ज़बान मुबारक से फ़रमाया और जो
ब इजाज़त राधास्वामी ट्रस्ट
के
पं० रघुनाथ सहाय पाठक के प्रबन्ध से
यूनियन प्रेस, प्रयाग में
छापी गई

इलाहाबाद
सन् १९२० ईसवी

पाँचवीं बार १०००] क़ीमत १॥)

राधास्वामी दयाल की दया
राधास्वामी सहाय
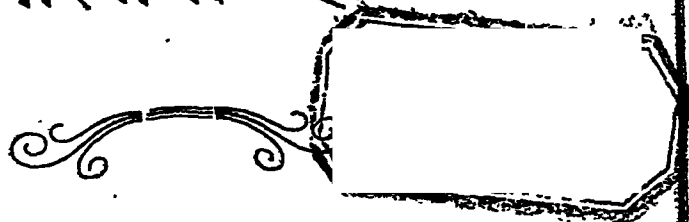
॥ खुलासा उपदेश हज़ूर राधास्वामी साहिब का ॥

बचन—यह जगत नाशमान है और सब असबाब भी इसका नाशमान है। अक़्लमंद याने चतुर मनुष्य वह है कि जिसने इसके कारोबार को अच्छी तरह जाँच करके और उसको फ़ानी याने कल्पित और मिथ्या जानकर इस मनुष्य शरीर को मालिक कुल का भजन सुमिरन करके सुफल किया और जो चीज़ें उस कर्ता ने अपनी दया से इस नरदेही में दी हैं उनसे लाभ उठा कर जौहर बेबहा याने तत्त्व बस्तु अनमोल जो कि सुरत

याने जीवात्मा है उसको अस्थान असली पर पहुँचाया ॥

दफ़ा १—जीवात्मा अर्थात सुरत को रूह कहते हैं और यह सब से ऊँचे स्थान याने सत्तनाम और राधास्वामी पद से उतर कर इस तन में आकर ठहरी हुई है और तीन गुन और पाँच तत्त्व और दस इंद्री और मन वग़ैरह में बँध गई है और ऐसे बंधन उसके साथ शरीर और उसके सम्बन्धी पदारथौं के पड़ गये हैं कि उनसे छूटना कठिन हो गया। इसी छूटने को मोक्ष कहते हैं। और बंधन अंतरी साथ इंद्री और तत्व और मन वग़ैरह के हैं, और बंधन बाहरी साथ पदारथौं और कुटुम्ब और क़बीले के हैं। इन दोनौं बंधनौं में जीवात्मा याने सुरत ऐसी फस गई है कि उसको अपने स्थान असली की याद भी जाती रही और इस क़दर मंज़िल दूर हो

गई कि अब इसका लौटना अस्थान असली को बिना मेहर मुर्शिद कामिल याने सतगुरु पूरे के कठिन हो गया। सिर्फ़ काम इतना है कि इन्सान याने मनुष्य अपनी सुरत याने रूह को उसके ख़ज़ाने और निकास याने मुक़ाम सत्त-नाम और राधास्वामी में पहुँचावे और जब तक यह नहीं होगा तब तक ख़ुशी और रंज और जिस क़दर दुख और सुख दुनिया के हैं उनसे छूटना नहीं हो सकता॥

२–मतलब और मन्शा कुल मतों का और यही तरीक़ सब अगले महात्माओं का रहा है कि जिस तरह हो सके रूह याने सुरत को उसके भंडार में पहुँचाना और पहुँचा हुआ उसी को कहते हैं कि जिसने अभ्यास याने असल करके अपनी रूह को अस्थान असली

पर पहुँचाया और कुल बंधन बाहरी और अंतरी और अस्थूल और सूक्ष्म और कारन को तोड़ करके मन को संसारी प्रपंच याने दुनिया से न्यारा किया। कामिल[१] और आमिल[२] और सच्चे आशिक़ और प्रेमी और पूरे भक्त और सच्चे ज्ञानी और पूरे साध वही हैं जो अख़ीर मंज़िल पर पहुँच गये और जो कोई पहुँचे हुओं का ज़िक्र[३] करते हैं या उनके बचनों को सिर्फ़ पढ़ते हैं या सुनाते हैं और आप मंज़िल पर नहीं पहुँचे और मंज़िल पर पहुँचने का अभ्यास भी नहीं करते हैं उनका नाम आलिम याने विद्यावान और बाचक है ॥

३—जितने आचार्ज और महात्मा और औतार और पैग़म्बर हर एक

(१) पूरा। (२) अभ्यासी। (३) बरनन।

मज़हब में हुए वे सब अपने अभ्यास के ज़ोर से अंतर में तरफ़ मुक़ाम असली के चले पर सब के सब धुर अस्थान[१] तक नहीं पहुँचे सो बहुत से तो मंज़िल पहिली पर और कोई २ दूसरी मंज़िल पर और कोई बिरले साध और प्रेमी मंज़िल तीसरी तक पहुँचे और सिर्फ़ संत मंज़िल पाँचवीं याने सत्तनाम पर और कोई बिरले संत मंज़िल आठवीं याने राधास्वामी पद तक पहुँचे। इसी अस्थान से आदि में सुरत का तनज़्ज़ुल याने उतार हुआ है और वही सुरत जैसे कि उतरती चली आई वैसे ही उस का निकास नीचे के मुक़ामों से याने सत्तलोक वग़ैरह से मालूम हुआ और जो इस मुक़ाम के भी नीचे रहे उनको उसी मुक़ाम से जहाँ तक कि वे पहुँचे सुरत याने रूह का निकास दिखलाई

(१) स्थान।

दिया और चूँकि[1] उन को पूरे गुरू नहीं मिले इस वास्ते उन्हौंने उसी स्थान को सुरत याने रूह का भंडार और वहाँ के मालिक को कुल नीचे की रचना का मालिक और कर्ता ठहरा कर अपने २ संगियों को उसी अस्थान और वहाँ के मालिक की उपासना याने पूजा का उपदेश किया और उसी का इष्ट और एतक़ाद[2] बँधवाया ॥

४—अब समझना चाहिये कि राधास्वामी पद सब से ऊँचा मुक़ाम है और यही नाम कुल मालिक और सच्चे साहिब और सच्चे ख़ुदा का है। और इस मुक़ाम से दो अस्थान नीचे सत्तनाम का मुक़ाम है कि जिस को संतों ने सत्तलोक और सच्च खंड और सारशब्द और सत्तशब्द और सत्तनाम और सत्तपुरुष करके बयान

(१) जो कि (२) निश्चय ।

किया है। इस से मालूम होगा कि यह दो अस्थान बिश्राम संत और परम संत के हैं और संतों का दर्जा इसी सबब से सब से ऊँचा है। इन अस्थानों पर माया नहीं है और मन भी नहीं है और यह अस्थान कुल नीचे के अस्थानों और तमाम रचना के मुहीत हैं याने रचना इन के नीचे और इन के घेर में है। राधास्वामी पद को अकह और अनाम भी कहते हैं क्योंकि यही पद अपार और अनन्त और अनादि है और बाक़ी के सब मुक़ाम इसी से प्रगट याने पैदा हुए और सच्चा ला-मकान जिसको अस्थान भी नहीं कह सकते इसी को कहते हैं॥

५—अब मालूम करना चाहिये कि साध और ज्ञानी और भक्त और औतार और पैग़म्बर और और सब महात्मा

जो कि निज स्थान पर न पहुँचे उन का दर्जा संतों से नीचा और बहुत कम है और चूँकि वे राह में न्यारे २ अस्थानों पर रह गये इसी सबब से न्यारे २ मत संसार में जारी हो गये याने जो कोई जिस मंज़िल पर पहुँचा उसने उसी मंज़िल को आख़िरी मुक़ाम और उसी मालिक को बेअंत और अपार समझा और उसी की पूजा का उपदेश किया और सबब इसका यह है कि मालिक कुल ने अपनी क़ुदरत से हर एक अस्थान को बतौर अक्स याने छाया निज अस्थान के रचा है और थोड़ी बहुत वही कैफ़ियत और हालत कि जो ऊँचे अस्थान पर है कुछ २ उसी क़िस्म की हालत और कैफ़ियत नीचे के अस्थानों पर भी पाई जाती है। पर हर एक

अस्थान की कैफ़ियत और हालत और उसके क़याम याने ठहराव में बड़ा फ़र्क़ है और जो जो रचना हर एक अस्थान पर देखने में आती है वह भी न्यारी २ है और दर्जे बदर्जे लतीफ़ याने सूक्ष्म और विशेषसूक्ष्म और अति सूक्ष्म और पाक याने निर्मल और विशेष निर्मल और महा निर्मल होती चली गई है। मगर यह हाल उसी को मालूम हो सकता है जिसने सब अस्थानों की सैर की है और नहीं तो जिस अस्थान पर जो पहुँचा उसने उसी अस्थान के मालिक के स्वरूप और प्रकाश को देखकर उसी को बेअंत और बेहद्द और ख़ुदा और परमेश्वर बतलाया और इस क़दर आनंद और सरूर उसको हासिल हुआ कि होश व हवास उसके सब जाते रहे और ऐसी हालत मस्ती और शौक़ की

पैदा हुई कि जिसका बयान नहीं हो सकता ॥

६—और मालूम होवे कि हर अस्थान पर सुरत पहुँचने वाले की कैफ़ियत अलहदा है और वही कुल नीचे के अस्थानों में ब्यापक और मुख़तार मालूम होती है । जैसे कि जो कोई पहिले या दूसरे अस्थान पर ठहरा उसने वहाँ पहुँच कर देखा कि सुरत याने मालिक उस अस्थान का नीचे के सब अस्थानों में ब्यापक और उन अस्थानों का करता है और उसी से कुल रचना याने पैदाइश नीचे की ज़ाहिर हुई और उसी के आसरे क़ायम है तब उसने उसी को मालिक ठहराया और अपने सेवकों और सतसंगियों को उसी अस्थान की भक्ती और पूजा के वास्ते उपदेश किया और आगे का भेद न जाना क्योंकि

आगे का भेद सिवाय संत सतगुरु के और कोई नहीँ जानता है और संत सतगुरु उनको नहीँ मिले जो मिलते तो भेद आगे का बतलाते और उनका रास्ता चलाते ॥

इसी तौर पर हर एक शख़्स जिसने अपने अंतर मैँ एक या दो या तीन अस्थान तै किये पूरा और पहुँचा हुआ कहा गया। और हाल यह है कि पहिले ही अस्थान पर पहुँचने पर सर्व शक्ती साधू को हासिल हो जाती हैँ इस वास्ते बसबब हासिल हो जाने शक्तियाँ और क़ुदरत और ताक़त के उस पहुँचने वाले को महात्मा और कामिल[1] क़रार दिया गया। और इस मैँ कुछ शक भी नहीँ कि यह दर्जा बनिस्बत दर्जात सिफ़ली याने नीचे के बहुत ऊँचा है और कदूरत दुनियावी और जिस्मानी

(१) पूरा माना गया।

याने मलीनता संसारी और देही की उस पहुँचने वाले में बिल्कुल नहीं रहती है॥

७—ऊपर ज़िक्र[१] हुआ है कि सत्त-नाम अस्थान जिसको सत्तलोक और सच्चखंड भी कहते हैं निहायत ऊँचा है और संतों का दरबार है और उसके ऊपर तीन अस्थान और हैं कि जिन को किसी संत ने नहीं खोला अब परम पुरुष पूरनधनी राधास्वामी दयाल ने जीवों पर निहायत कृपा करके उन मुक़ामों को खोल कर साफ़ २ बर्नन किया है और उनका भेद और कैफ़ियत भी ज़ाहिर की और सब से ऊँचा और धुर अस्थान राधास्वामी पद जो सब की आदि और भंडार है और परम संतों का निज महल है उस का भेद दया करके बख़्शा। इसी अस्थान से शुरू[२] में

(१) बरनन। (२) आदि।

सुरत उतरी थी और इसके नीचे जितने अस्थान हैं वे सब सुरत के उतार के हैं और अब जीवात्मा याने सुरत या रूह इस जिस्म याने देह में सहसदलकँवल के नीचे ठहरी हुई है और वहाँ से इसकी रौशनी और ताक़त तमाम जिस्म में उतर कर और फैलकर मन और इंद्रियों के द्वारे कुल जिस्मानी और नफ़सानी याने स्थूल और सूक्ष्म कारज दे रही है॥

८—मन दो हैं एक ब्रह्मांडी और दूसरा पिंडी। ब्रह्मांडी मन का अस्थान त्रिकुटी और सहसदलकँवल में है और इसी को ब्रह्म और परम ईश्वर और परम आत्मा और खुदा कहते हैं और पिंडी मन का अस्थान नेत्रों के पीछे और हिरदय में है। यही मन सुरत की मदद से कुल कारोबार दुनिया का कर रहा है। सुरत याने रूह को

इस क़दर प्रीत साथ मन के हो गई है कि उसके संग बिल्कुल रुजू उसकी नीचे की तरफ़ याने दर्जात सिफ़ली में हो रही है और इसी से मन और इंद्री वग़ैरह को ताक़त कारोबार की हासिल है। जो जीवात्मा याने सुरत याने रूह मुतवज्जह अपने अस्थान असली की तरफ़ होवे तो असबाब[1] दुनिया की तरफ़ से तवज्जह घटती जावे और सूरत ख़लासी याने मोक्ष की निकल आवे। जब सुरत ब्रह्मांडी मन के अस्थानों के परे अपने अस्थान असली याने सत्तलोक में पहुँचेगी तब कुल बंधन कारन और सूक्ष्म और अस्थूल और देह और इंद्री और मन के टूट जावेंगे और ब्यौहार ऐसे पहुँचने वाले का सिर्फ़ कारज मात्र याने ज़रूरी रह जावेगा और वह भी बइख़्तियार अपने याने जब चाहे जब

(१) पदारथ।

मुतलक़ तोड़ दे। खुलासा यह है कि जब तक सुरत याने जीवात्मा इन क़ैदों को जो कि साथ स्थूल सूक्ष्म और कारन देह याने जिस्म और मन और इन्द्रियों के पड़ गई हैं तोड़कर या कम करके और इन मलीन अस्थानों को जो पिंड और ब्रह्मांड के तअल्लुक़ हैं छोड़ कर तरफ़ अस्थान असली के रुजू न करेगी और ब्रह्मांडी मन के परे न पहुँचेगी तब तक जड़ चेतन की गाँठ न खुलेगी—और कसीफ़ याने जड़ पदारथ यह हैं—मन और इंद्री और देह याने जिस्म और कुल संसारी ब्यो-हार और भोग वग़ैरह, और सुरत लतीफ़ और चेतन है और इन दोनों की मिलौनी का नाम गाँठ है सो जब तक यह गाँठ न खुले याने मिलौनी माया की दूर न होवे तब तक उसका

नाम मोक्ष नहीं हो सक्ता और न कभी बीज आसा और तृष्णा का नाश होगा॥

९—हरचंद कि अभ्यास के बल से और कुछ रास्ता तै करने से इन का ज़ोर किसी क़दर कम हो जावेगा या कुछ दिनों तक असल में दब जाना और ज़ाहिर में जाता रहना भी इनका मालूम पड़ेगा पर बिलकुल दूर होना जब तक कि सत्तलोक में सुरत न पहुँचेगी नहीं हो सक्ता है क्योंकि जो सत्तलोक तक न पहुँची तो जब ब्रह्मांडी मन और माया का असर होगा और जब भोग और बिलास भारी झकोला देंगे तब ख़ौफ़ है कि साधू अभ्यास पहिले और दूसरे का याने जो कि सहसदलकँवल तक या उसके ऊपर त्रिकुटी तक पहुँच गया है उसको न सम्हाल सकेगा और अचरज नहीं कि फिसल जावे और चाहे

जल्द होश में आकर भोगों से नफ़रत करके फिर अपने अस्थान को अभ्यास करके और गुरू की दया से सम्हाल ले पर दाग़ी होने में उसके कुछ संदेह नहीं इस वास्ते मुनासिब है कि प्रेमी अभ्यासी अपनी सुरत को ऐसे ऊँचे अस्थान पर पहुँचावे कि जहाँ आसा और तृष्णा किसी क़िस्म की और बिषय भोग की बासना का चाहे वह संसारी होवे और चाहे परमार्थी नाम और निशान भी नहीं है सिर्फ़ परमपुरुष पूरनधनी राधास्वामी कुल मालिक के दर्शन ही का आनंद और बिलास है तब अलबत्ता वह शख़्स बच जावेगा और फिर किसी तरफ़ की रुजू उसकी इस तरफ़ को मुत-लक़[1] न होगी और तब माया के घेर से बाहर हो जावेगा और फिर वही अभ्यासी संत पदवी को प्राप्त हुआ।

(१) बिलकुल।

यही सबब है कि बड़े २ औतार और ऋषीश्वर और मुनीश्वर और औलिया और पैग़म्बर अपने २ वक़्त पर माया के चक्कर में आ गये और अपने पद को उस वक़्त भूलकर धोखा खा गये जैसे कि नारद और ब्यास और शृंगीऋषि और पाराशर और ब्रह्मा और महादेव जी और औतार वग़ैरह इन सब का हाल जुदा २ लिखा है और जोकि वह थोड़ा या बहुत सब को मालूम है इस वास्ते इस अस्थान पर उस की शरह करना मुनासिब नहीं समझा गया ॥

१०—ऊपर जो इशारा किया गया उसका मतलब यह नहीं है कि यह लोग बिलकुल माया के क़ैदी हो गये या किसी तरह से उनका भारी नुक़सान हुआ बल्कि ग़रज़ यह है कि इनको माया ने अपना ज़ोर दिखला कर धोखा दे

दिया और सबब इसका ज़ाहिर है कि वे हरचंद बड़े अस्थान पर पहुँचे थे पर उस अस्थान तक नहीं पहुँचे कि जो माया के घेर से बाहर है और मालूम होवे कि वह धुर अस्थान सत्तनाम और राधास्वामी है। अब तफ़सील उतरने दर्जे सुरत की लिखी जाती है इस से साफ़ मालूम होगा कि असली अस्थान सुरत का किस क़दर दूर और ऊँचा है और औतार और पैग़म्बर और औलिया और देवता वग़ैरह कौन २ से अस्थान से प्रगट हुए और हद्द उनकी कहाँ तक है॥

११—पहिला याने धुर अस्थान सब से ऊँचा और बड़ा कि जिस का नाम अस्थान भी नहीं कहा जाता है उसको राधास्वामी अनामी और अकह कहते हैं। यह आद और अंत सब का है और कुल का मुहीत याने सब उसके घेर में

हैं और हर जगह इसी अस्थान की दया और शक्ती अंश रूप से काम दे रही है और आदि में इसी अस्थान से मौज उठी और शब्द रूप होकर नीचे उतरी। यह अस्थान परम संतों का है सिवाय बिरले संतों के यहाँ और कोई नहीं पहुँचा और जो पहुँचा उसी का नाम परम संत है॥

१२–राधास्वामी पद के नीचे दो अस्थान बीच में छोड़ कर सत्तनाम का अस्थान याने सत्तलोक महा प्रकाश-वान और पाक और निर्मल है और महज़ रूहानी याने चैतन्य ही चैतन्य है और कुल नीचे की रचना का आद और अंत यही है और इस पद से दो अंश उतरीं और वह कुल नीचे के अस्थानों में ब्यापक हुईं। संत मत में सच्चा मालिक और करता याने पैदा करने

वाला इसी को कहते हैं और सत्तशब्द का ज़हूर इसी अस्थान से हुआ और इस को महानाद और सार शब्द भी कहते हैं और सत्यपुरुष और आदि पुरुष भी इसी का नाम है। यह अजर अमर अबिनाशी और सदा एक रस है संत इसी पुरुष का रूप याने औतार हैं। यह अस्थान दयाल पुरुष का है यहाँ सदा दया और मेहर ही मेहर और आनंद ही आनंद है। इस अस्थान में बेशुमार हंस याने प्रेमी सुरतें अथवा भक्त जुदा जुदा दीपों में बसते हैं और सत्यपुरुष के दर्शन का बिलास और अमी का अहार करते हैं और यहाँ काल और कर्म और क्रोध और दंड और पुन्य और पाप और दुख और संताप का नाम और निशान भी नहीं है इस वास्ते इस पुरुष को दयाल और

रहमान कहते हैं और सच्चे और कामिल फ़क़ीरों ने इसी मुक़ाम को हूत कहा है और इसी मुक़ाम पर सुरत राधास्वामी पद से उतर कर ठहरी और यहाँ से फिर नीचे उतरी। जो कोई इष्ट राधास्वामी का बाँध कर और उनके चरनों में दृढ़ निश्चय करके सब अस्थानों को तै करता हुआ इस स्थान याने सत्तलोक तक पहुँचा वही राधास्वामी पद में भी पहुँच सक्ता है और किसी तरह से नहीं पहुँच सक्ता है इस वास्ते ख़ास उपासना संतों की सत्य-पुरुष राधास्वामी की है और उनका इष्ट और मालिक सत्यपुरुष राधास्वामी हैं और इस अस्थान पर पहुँचने वाले का नाम संत और सतगुरु है और कोई संत और सतगुरु पदवी का अधिकारी नहीं है॥

१३–सत्तलोक के नीचे दो अस्थान

छोड़कर मुक़ाम सुन्न याने दसवाँ द्वार है जहाँ कि सुरत सत्तलोक से उतर कर ठहरी और फिर वहाँ से ब्रह्मांड में फैली और फिर पिंड में उतरी। संतों का आत्मपद और फ़क़ीरों का मुक़ाम हाहूत यही है याने जब इस मुक़ाम पर सुरत पाँच तत्व और तीन गुन और कारन व सूक्ष्म व स्थूल देह से अलहदे याने निर्मल होकर पहुँचती है तब क़ाबिल भक्ती अपने मालिक के होती है और यहाँ से प्रेम का बल ले कर आगे को चलकर सत्तलोक और फिर राधास्वामी पद में पहुँचती है। इस स्थान पर पहुँचने वाले को राधास्वामी याने संत मत में पूरा साध कहते हैं। इस स्थान पर भी हंसों याने प्रेमी सुरतों की मंडलियाँ रहती हैं और अमृत का अहार और तरह तरह के

आनंद और बिलास में मगन रहती हैं और पुरुष और प्रकृति का ज़हूर इसी अस्थान से हुआ इसी को पारब्रह्म पद कहते हैं ॥

१४–सुन्न याने दसवें द्वार के नीचे मुक़ाम त्रिकुटी है कि जिसको गगन भी कहते हैं। ब्रह्म और प्रणव याने ओंकार पद इसी अस्थान को कहते हैं और सच्चे फ़क़ीरों ने इसी मुक़ाम को अर्श अज़ीम और आलम लाहूत कहा है। जोगीश्वर और सच्चे और पूरे ज्ञानी यहाँ तक पहुँचे और यहाँ से महा सूक्ष्म तीन गुन और पाँच तत्व और बेद और कुरान और सरावगियों का आद पुरान और और किताब आसमानी की आवाज़ और कुल रचना याने पैदाइश का सूक्ष्म याने लतीफ़ मसाला और ईश्वरी माया याने शक्ति

प्रगट हुई और औतार दर्जे आला जैसे राम और कृष्ण और जोगीश्वर जैसे व्यास और वशिष्ठ और ऋषभदेव सरावगियों के इसी स्थान से प्रगट हुए और महा आकाश भी नाम इसी स्थान का है और चैतन्य प्राण भी यहाँ से ज़ाहिर हुए और इस स्थान के मालिक को प्राण पुरुष और ख़ुदाय अज़ीम भी कहते हैं और संत उसको ब्रह्मांडी मन कहते हैं॥

१५—इस के नीचे स्थान सहसदल-कँवल का है और निरंजन ज्योति और शिव शक्ति और लक्ष्मी नारायण और नारायण ज्योति स्वरूप और श्याम सुंदर और अर्श और ख़ुदा नाम इसी मुक़ाम के हैं। संत मत में इसी स्थान की साधना अभ्यासियों को अव्वल में कराई जाती है। कुल औतार दर्जे दोयम के और पैग़म्बर दर्जे आला के और

औलिया वग़ैरह और जोगी दर्जे आला इसी स्थान से प्रगट होते हैं और इसी में समाते हैं और फ़क़ीर और संत इसी को निज मन कहते हैं। इसी स्थान से तन्मात्रा तत्वों की पैदा हुईं और उस के पीछे स्थूल तत्व और इंद्रियाँ और प्राण और प्रकृतियाँ प्रगट हुईं। इसी स्थान का अक्स याने छाया पहले नुक़ते सुवेदा याने तिल में जो आँखों के पीछे है और फिर दोनों आँखों में ठहरी हुई है। जाग्रत अवस्था में जीवात्मा का स्थान इसी तिल में है और सहसदल-कँवल से चिदाकाश जिसको बाज़े ज्ञानी ब्रह्म कहते हैं प्रगट होकर तमाम देह याने पिंड में और कुल रचना में जो इस मुक़ाम के नीचे है फैला। और उसी चैतन्य आकाश की क़ुदरत का ज़हूर सब नीचे की रचना में है याने

यही आकाश चैतन्य रूप कुल नीचे की रचना का चैतन्य करने वाला है। यहाँ तक तफ़सील दर्जात उलवी[1] याने आस्मानी की ख़तम हुई इस स्थान के नीचे स्थान ब्रह्मा बिस्नु और महादेव का है और वह रूप इन देवताओं का है। संत और फ़क़ीर जीवात्मा याने सुरत को आँखों के मुक़ाम से अव्वल इसी स्थान की तरफ़ ऊँचे को चढ़ाते हैं और सिवाय इस के दूसरा रास्ता चढ़ने का नहीं है॥

१६-यहाँ तक दर्ज शब्द याने नाद के मुक़र्रर हैं मुताबिक़ तादाद इन स्थानों के याने सत्तलोक से सहसदलकँवल तक पाँच शब्द भी हैं कि वे मुर्शिद कामिल याने संत सतगुरु पूरे से मालूम हो सकते हैं। हर एक मुक़ाम का शब्द अलहदा है और उसका भेद भी जुदा

१—ऊँचे।

है। पाँचवाँ शब्द सत्तलोक में है और उसके परे जो शब्द की धार है उसका बयान कलाम में या लिखने में नहीं आ सकता और न उसका यहाँ कोई नमूना है कि जिससे उस आवाज़ का अनुमान कराया जावे वह शब्द उस मंज़िल पर पहुँचने के वक़्त अभ्यासी को मालूम होगा। यह पाँच शब्द निशान उन पाँच स्थानों के हैं और उन्हीं की धुन पकड़ कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर दर्जे बदर्जे ऊँचे की तरफ़ याने धुर स्थान तक सुरत चढ़ सकती है और किसी जुगत से ख़ास कर इस कलियुग में सुरत का चढ़ना हर्गिज़ हर्गिज़ मुम्किन नहीं है॥

१७—मालूम होवे कि धुर स्थान याने अंतपद जो राधास्वामी है उस में रूप और रंग और रेखा नहीं है

बल्कि शब्द भी वहाँ गुप्त है वहाँ का हाल कुछ कहने और लिखने में नहीं आ सकता वह बिश्राम का स्थान परम संतों का है ॥

१८—जैसे कि सत्तलोक से सहसदल-कँवल तक छः मुक़ाम उलवी याने आस्मानी हैं इसी तरह छः स्थान सिफ़ली याने पिंड के भी उनके नीचे हैं जो कि असल में अक्स याने छाया उन ऊँचे स्थानों की हैं और नाम और स्थान उनके जुदा २ लिखे जाते हैं हरचंद कि मुताबिक़ उपदेश हज़ूर राधास्वामी साहिब के और ब मुक़ाबले उस आसान और सहज जुक्ती के जो उन्हों ने दया करके प्रगट की अब अभ्यासी को कुछ ज़रूरत तै करने उन नीचे के मुक़ामों की नहीं रही फिर भी वास्ते इत्तिला और समझने के और

दूर करने शक और संशय और ग़लती के जो कि इस वक़्त में बाचक ज्ञानियों और विद्यावानों ने बहुत पैदा कर दिये हैं इन नीचे के मुक़ामों का भी हाल थोड़ा सा लिखना मुनासिब और ज़रूर मालूम हुआ। इन छः मुक़ामों को षट चक्र कहते हैं और यह सब मुक़ाम पिंड याने देह से तअल्लुक़[1] रखते हैं और जो उलवी याने आस्मानी हैं उनका तअल्लुक़ ब्रह्मांड से है और ब्रह्मांड के परे ॥

१९—पहला चक्र दोनों आँखों के पीछे है और यहाँ बासा सुरत याने रूह का है और वह इसी मक़ाम से पिंड में दर्जे ब दर्जे नीचे के पाँच चक्रों में होकर फैली इसका नाम परमात्मा है और बहुतेरे मत और मज़हबों का ख़ुदा और ब्रह्म और भगवान यही है

[1]—सम्बन्ध ।

और यही मुक़ाम जाग्रत अवस्था असली जीव का है और यहाँ से भी पैग़म्बर और औतार और वली और योगी और सिद्ध प्रगट हुए॥

२०—दूसरे चक्र का मुक़ाम कंठ याने गले में है इस जगह सुरत याने जीवात्मा का अक्स कंठ चक्र में ठहर कर स्वप्न की रचना दिखलाता है और बिराट स्वरूप भगवान और आत्म पद बहुत से मज़हब और मतों का यही है और देही के प्राण का स्थान भी यही है॥

२१—तीसरा चक्र हृदय में है और दिल याने पिंडी मन का यही स्थान है और शिव शक्ति की छाया का इस जगह पर बासा है इस स्थान से इंतिज़ाम याने बंदोबस्त कुल पिंड का हो रहा है पर मालूम होवे कि यहाँ पिंड याने जिस्म से मतलब सूक्ष्म शरीर

से है और संकल्प बिकल्प सब इसी स्थान से पैदा होते हैं, रंज और ख़ुशी और ख़ौफ़ और उम्मेद और दुख और सुख का भी असर इसी स्थान पर होता है॥

२२—चौथा चक्र नाभि कँवल—इस जगह पर विष्णु और लक्ष्मी का बासा है और परवरिश तन की इसी मुक़ाम से हो रही है और भंडार प्रान कसीफ़ याने स्थूल पवन का इसी स्थान पर है॥

२३—पाचवाँ इन्द्री कँवल—इस जगह पर ब्रह्मा और सावित्री का बासा है पैदाइश जिस्म स्थूल की और उसकी ताक़त और काम वग़ैरह का ज़हूर इसी स्थान से है॥

२४—छठवाँ गुदा चक्र—इस स्थान पर गनेश का बासा है और जोकि

अगले वक़्त में प्राणायाम वाले अष्टांग योग का अभ्यास इसी मुक़ाम से शुरू किया जाता था इस सबब से अव्वल याने प्रथम पूजा मालिक छठे चक्र की याने गणेशजी की हर काम में मुक़र्रर की गई ॥

२५—अब मालूम होवे कि यह सब स्थान उलवी[1] और सिफ़ली[2] अन्तर में हैं बाहर के स्थानों से कुछ ग़रज़ नहीं है। दर्जात सिफ़ली गुदा चक्र से आँखों के नीचे तक ख़तम हुए इस वास्ते पिंड की हद्द आँखों तक है और इसी को नौ द्वार का पसारा भी कहते हैं और वह नौ द्वार यह हैं—दो सूराख़ आँखों के, दो कानों के, दो सूराख़ नाक के, एक सूराख़ मुख का, और एक सूराख़ इन्द्री, और एक सूराख़ गुदा का ॥

१—ऊँचे। २—नीचे।

२६—आँखों के ऊपर मैदान सहसदलकँवल का शुरू हुआ और यही शुरू ब्रह्मांड की है और यह हद्द दसवें द्वार के नीचे तक ख़तम हो जाती है याने स्थान प्रणव तक; और प्रणव के ऊपर पारब्रह्मांड कहलाता है। और मुताबिक़ संत मत के दर्जात सिफ़ली स्थूल सगुन में दाख़िल हैं और दो स्थान सहसदलकँवल और त्रिकुटी के निर्मल सगुन कहलाते हैं और इस के परे का स्थान याने सुन्न निर्गुन ख़ालिस कहलाता है और उस के पार देश संतों का शुरू होता है इसी सबब से कहा गया है कि स्थान संतों का सगुन और निर्गुन के पार है और यही सबब है कि कृष्ण महाराज ने अर्जुन को उपदेश किया कि वेदों की हद्द से कि वह त्रिगुण आत्मक याने

सगुन हैं पार हो तब असल मुक़ाम पावेगा और भेद और कैफ़ियत रचना वग़ैरह की और जो जो शक्ती और क़ुदरत कि इन सब स्थानों में रक्खी गई हैं बहुत से बहुत हैं यह सब हाल सच्चे अभ्यासी को सतगुरु पूरे से मालूम होगा आप अपने अभ्यास के वक़्त वह आप देखता जावेगा ॥

२७–अब इस बात को ज़ाहिर करना ज़रूर है कि जब पिछले साध और जोगीश्वर और और महात्माओं ने देखा कि भेद स्थान उलवी याने आसमानी का बहुत बारीक है हर एक की ताक़त उसके समझने की नहीं है और अभ्यास भी उसका प्राणायाम के वसीले से बहुत कठिन है ख़ासकर पिछले वक़्त में जब कि सिवाय ब्राह्मणों के और किसी क़ौम को हुक्म मज़हबी किताबों के पढ़ने का

नहीं था तब उन्हों ने अव्वल भेद सिर्फ़ स्थान सिफ़ली[1] का प्रगट किया और भेद स्थान उलवी[2] को गुप्त रक्खा इस मतलब से कि रफ़्ते २ जैसे अभ्यासी चढ़ता जावेगा वैसे ही आगे का भेद उसको जताया जावेगा पर यह मारग और उसका अभ्यास इस क़दर थक गया कि अभ्यासी स्थान सिफ़ली के भी बहुत कम मिले फिर रफ़्ते २ उस वक़्त के बुज़ुर्गों ने मसलहत वक़्त समझ कर कुल जीवों को जो कि बिलकुल मूर्ख और अनजान थे औतारों और देवताओं वग़ैरह की बाहरमुखी पूजा में लगाया इस ख़याल से कि यह नाम और रूप जो असल में अंतरी मुक़ामों के थे याद करके उनकी धारना अव्वल बाहर-मुखी करें और फिर अंतर में लगें।

१—नीचे २—ऊँचे।

पर आम लोगों से यह काम भी दुरुस्त और पूरा न बना तब बाज़े प्रेमियों ने वास्ते आसानी अभ्यास के बाज़े औतार और देवता दर्जे आला की मूरत ध्यान करने के लिये और सुरत और दृष्टि ठहराने के वास्ते बनाईं मगर रोज़गारियों ने इस मौक़े को अपने मुफ़ीद मतलब देखकर मन्दिर और मूरतें बड़े २ औतार और देवताओं की धनवालों को तरग़ीब[1] देकर याने बहला और फुसला कर बनवानी शुरू कीं और अपने रोज़गार के लिये उनकी पूजा बहुत ज़ोर और शोर के साथ जारी कराई और पुरानी किताबों को जिन में अभ्यास और उपासना का भेद लिखा था गुप्त करना शुरू किया इसी तरह पर आहिस्ते २ पूजा औतार और देवताओं की मूर्तों

१—समझौती।

की आम जारी हो गई और हाल यह है कि ऐसी पूजा करने में किसी को कुछ तकलीफ़ नहीं होती हर एक शख़्स आसानी से कर सकता है इस सबब से सब इसी काम में लग गये और अंतर का भेद रोज़ ब रोज़ गुप्त होता गया और सब के सब नक़ली परमार्थी होते चले गये और रफ़्ते २ तमाम मुल्क में यही चाल जारी हो गई। और संसारी और भोगी लोगों को यह पूजा बहुत पसंद आई क्योंकि वे अपने मन के मुआफ़िक़ पूजा करने लगे और उसमें भी माया के भोग और बिलास का रस लेने लगे॥

२८—अब कि कलियुग का बहुत ज़ोर और शोर के साथ ज़हूर हुआ और जीवों को अनेक तरह के दुख में जैसे मुफ़लिसी और बीमारी और मरी और

झगड़े और बखेड़े जो कि आपस में ईर्षा और विरोध के सबब से पैदा होते हैं गिरफ़्तार और महा दुखी देखा और यह भी मुलाहिज़ा किया कि कुल जीव सीधे रास्ते से बहुत दूर हो गये और निहायत भूल में जा पड़े तब सत्तपुरुष राधास्वामी को दया आई और वे कृपा करके संत सतगुरु रूप धर कर संसार में प्रगट हुए और सच्चे मत और मारग का भेद साफ़ २ बानी और बचन में खोल कर कहा और जब कि उन्हों ने देखा कि परमार्थ में ब्राह्मणों ने अपनी जीविका के कारण बहुत चालाकी की है और असल किताबों को सब की नज़र से छिपा दिया है तब दया और मेहर करके कुल भेद को भाषा बानी में आसान तौर से बर्णन किया और जीवों को उपदेश भी फ़रमाया। हरचंद

कि ब्राह्मणौं का जाल ऐसा डाला हुआ नहीं था कि यकायक उपदेश संतौं का जारी होवे फिर भी आहिस्ते २ बहुत से लोगौं ने याने जिन्हौं ने असल बात को बिचार करके समझा और निर्णय किया उन्हौंने उपदेश को मान करके मत संतौं का इख़्तियार किया जैसे कि मत कबीर साहिब और गुरू नानक और जगजीवन साहिब और पलटू साहिब और ग़रीबदास जी का जो कि इस अर्से सातसौ बरस मैं जा ब जा थोड़ा बहुत जारी हुआ॥

२९—पंडित और भेष हर एक संत के वक़्त मैं ज़ोर और शोर अपना दिखलाते रहे और जहाँ तक हो सका ऐसे जतन करते रहे कि जिसमैं असल मत संतौं का जो स्थान प्रणव तक वेद मत के साथ मुआफ़िक़त रखता है जारी

न होने पावे क्योंकि उनको अपने रोज़गार जाते रहने का ख़ौफ़ पैदा हुआ और उन्हों ने नादान और संसारी जीवों को अनेक तरह से भरमाया और भड़काया इस सबब से ऐसी तरक्क़ी संतों के मत की जैसा कि चाहिये नहीं हुई ॥

३०—यह सच है कि उमूमन कुल जीव अधिकारी संत मत के नहीं हैं याने जो जीव विषयी याने भोगी हैं और उनको सच्ची चाह अपने मालिक के मिलने की या अपने जीव के उद्धार की नहीं है उन की अक़्ल इस मत के समझने में हैरान होती है और जो कि पुराने इष्ट पहिले से बँधे हुए हैं उन के छोड़ने और संतों का इष्ट बाँधने में उनको दिक्क़त मालूम होती है और चूँकि पंडित और भेष उनको डराते और

फ़र्माते हैं इस सबब से उनका दृढ़ निश्चय इस मत पर नहीं आता है और संतों की यह मौज है कि वे जारी होना आम इस मत का बिना निश्चय किये हुए और बिना समझे हुए भेद के पसंद नहीं फ़र्माते हैं किस वास्ते कि ऐसा अक़ीदा[1] फिर वही सूरत पैदा करेगा जैसी कि आज कल औतार और देवताओं की पूजा में हो रही है याने ज़ाहिर में लोग इष्ट राम और कृष्ण और महादेव और बिष्णु और शक्ती और ब्रह्म का रखते हैं और हक़ीक़त में धन और स्त्री और औलाद और नामवरी के आशिक़ और आधीन रहते हैं अपने इष्ट के हुक्म का कुछ ख़याल भी नहीं और न कुछ उसका ख़ौफ़ है और न कुछ उसकी मुहब्बत याने प्रीत उन के दिल में जगह रखती है फिर ऐसे इष्ट

१—निश्चय।

से चाहे औतार का होवे चाहे देवता का होवे या संत सतपुरुष का या परम-पुरुष पूरनधनी राधास्वामी का होवे कुछ हासिल नहीं हो सकता है ॥

३१—और जो इष्ट कि कला और शक्ती याने करामात देखने से बाँधा गया है उसके निश्चय का तो बिलकुल एतबार नहीं हो सकता है क्योंकि जब तक कि दलील अक़ली और मज़हबी से एक बात का निर्णय और तहक़ीक़ नहीं किया है तब तक उसका निश्चय मज़बूत और क़ायम नहीं और यह हाल आज कल साफ़ नज़र आता है कि बहुत से लोग जो कि ज़ाहिर में हिन्दू या मुसलमान हैं मगर बातिन याने अंतर में कोई मज़-हब नहीं रखते। इस का सबब यही है कि उन्होंने अपने मत की किताबों को

ग़ौर और ख़याल से नहीं पढ़ा और न समझा और न किसी आमिल[1] से तहक़ीक़ किया और इस सबब से उन किताबों के बचनों पर चाहे वे रोचक हैं या भयानक उनको निश्चय और एतक़ाद जैसा चाहिये वैसा नहीं आता है और न कोई अपनी उमर भर में जैसे और कामों की तहक़ीक़ात पूरी २ करता है ऐसे मज़हब की तहक़ीक़ात करता है अपने अक़ल और हवास के मुवाफ़िक़ ख़ाह औरों का हाल देख कर या अपने बुज़ुर्गों से सुन कर हर एक शख़्स चाहे जिसमें अपना इष्ट बाँध लेता है और तहक़ीक़ात उसकी बिलकुल नहीं करता है। ऐसा इष्ट सिर्फ़ नाम के वास्ते है इसी सबब से नाक़िस और बुरे कामों की दुनिया में रोज़ ब रोज़ तरक़्क़ी है और जो कि किसी का ख़ौफ़ नहीं रहा और न कोई

१—अभ्यासी।

किसी के हाल को पूछता है इस वास्ते लोग रोज़ ब रोज़ नीचे के दर्जों की तरफ़ झुकते चले जाते हैं ॥

३२—पंडित और सन्यासी और साधू और मौलवी जो अगुवा और चलाने वाले वेद मत और कुरान के थे वह इस वक़्त में आप इस दौलत से बेनसीब हैं और आप सब से ज़ियादा दुनिया के भोग बिलास और लोभ और मान बड़ाई की चाह में फँस गये हैं फिर अब कौन है कि जो इन सब की यानें पंडित और भेष और गृहस्थियों की ग़लती ज़ाहिर करके इन को सीधा रास्ता बतलावे यह काम सिर्फ़ संतों का है और जो कोई इस वक़्त में उन के बचनों को अच्छी तरह समझ करके उनका अभ्यास याने साधना करेगा बेशक वह मन के फ़रेब और माया के जाल

से बच जावेगा नहीं तो हर एक को अपने २ काम का इख़्तियार हासिल है इस मुआमले में ज़ोर और ज़बर-दस्ती नहीं हो सकती है ॥

३३—संतों की दया में कुछ शक नहीं कि उन्हों ने आज कल के जीवों के वास्ते थोड़े से में ख़ुलासा सच्चे मत और मारग का और सीधा और सहज रास्ता मालिक की प्राप्ती का प्रगट किया याने अगले वक़्त में अभ्यासी मूल चक्र याने गुदा चक्र से अभ्यास शुरू करते थे और बड़ी मुश्किल के साथ बहुत अर्से में कोई छठे चक्र तक और कोई ख़ास २ सहसदलकँवल या त्रिकुटी तक पहुँच कर जोगी या जोगीश्वर गती हासिल करते थे अब संतों ने शुरू अभ्यास सहसदलकँवल से कराया और

बजाय अष्टांग जोग याने प्राणायाम के जिस में दम रोकना पड़ता है सहज जोग याने सुरत शब्द का मारग जारी किया। इस अभ्यास को हर कोई कर सकता है और नफ़ा इसका प्राणायाम और दूसरे अभ्यासयों से, मिस्ल[1] मुद्रा और हठ जोग वग़ैरह के, बहुत ज़ियादा है बल्कि इन सब अभ्यासों का फल सुरत शब्द मारगी को उसके रास्ते में हासिल होता चला जाता है इस का मुफ़स्सल हाल आगे बर्णन किया जावेगा॥

३४—अब इतना बिचारना चाहिये कि जो लोग नाभी चक्र और हृदय चक्र में ध्यान लगाते हैं वह स्थान असली से किस क़दर दूर हैं याने जो वह स्थान फ़तह भी हो जावें तो जो कुछ कि उनको हासिल होगा वह अक्स याने छाया स्थान असली की होगी

१—जैसे।

सो फ़तह होना उन स्थानों का याने हृदय कँवल और नाभि कँवल का भी इस वक़्त में बहुत मुशकिल हो गया है क्योंकि प्राणायाम या मुद्रा का अभ्यास किसी से बन नहीं पड़ता है और जब कि इनको भेद स्थान उलवी[१] का बिल्कुल मालूम नहीं हुआ और दर्जात सिफ़ली[२] को ही उन्हों ने दर्जात उलवी और सिद्धांत समझा फिर वह किस तरह धुर स्थान पर पहुँच सकते हैं और कुल मालिक का पद उनको कब हासिल हो सकता है इसी वास्ते संत जो कि सब से ऊँचे और महा निर्मल और पाक स्थान सत्तनाम और राधास्वामी पर पहुँचे फ़रमाते हैं कि दुनिया के लोग सब भूल और भरम में पड़े हैं। मालिक उनका कहीं है और वह कहीं तलाश करते हैं

१—ऊँचे २—नीचे।

सो यह तो हाल उन लोगोँ का है जो कि थोड़ी बहुत अंतरमुख पूजा और सेवा और ध्यान करते हैँ या षट चक्र के बींधने मेँ लगे हैँ और जो बाहरमुखी हैँ याने तीर्थ और ब्रत और मूर्ति पूजा मेँ अटके हैँ वे तो किसी गिन्ती ही मेँ नहीँ हैँ याने बिल्कुल ग़फ़लत और अँधेरे मेँ पड़े हैँ जो उसी काम मेँ लगे रहेँगे और खोज असल मालिक का नहीँ करेँगे तो सच्चे मालिक का पता और दर्शन हरगिज़ हरगिज़ नहीँ पावेँगे॥

३५–षट चक्र याने गुदाचक्र से सहस-दलकँवल के नीचे तक छः चक्र गिन्ती मेँ हैँ। बड़े अफ़सोस की बात है कि जो मालिक और करता ऐसा बड़ा और मेहर-बान और दयाल है कि जिसने सब रचना पैदा की और मनुष्य को उत्तम देह दी और तरह २ और क़िस्म २ की चीज़ेँ और सूरतेँ पैदा कीँ उस को लोग

पत्थर या धातु की मूर्ति में या पानी जैसे गँगा जमुना नर्बदा में या दरख़्त जैसे तुलसी या पीपल में या जानवरों में जैसे गाय और हनुमान और नाग में थाप कर पूजते और ढूँढ़ते हैं। इन सब से तो प्रत्यक्ष सूरज और चाँद और इन्सान ख़ुद आपही बड़ा है तो मालिक की पैदा की हुई चीज़ों को ख़ुदा और मालिक समझ कर पूजना और असल मालिक का खोज न करना बल्कि अपने हाथ से बनाई हुई चीज़ों को आप ही पूजना किस क़दर ग़फ़लत और नादानी और बेपरवाही ज़ाहिर करना है कि उत्तम नरदेही पाकर उस को मुफ़्त बरबाद करके अधम गति को पाना और चौरासी की नीच योनि और नरकों में जाना इस से बड़ा गुनाह और पाप जीव की निस्बत और क्या होगा अगर

सच्चे मालिक की ख़बर होती तो उसका कुछ ख़ौफ़ और इश्क़[1] दिल में पैदा होता और उन चीज़ों में कि जो बनाई हुई आदमी के हाथ की हैं कैसे डर या प्रीत पैदा हो सकती है॥

३६—जो सतगुरु पूरे हैं याने सच्चे मालिक से मिले हुए हैं या सच्चे साध और फ़क़ीर हैं जो वे मिल जावें और उन की दया हो जावे याने उनकी दृष्टि मेहर की इस जीव पर पड़े तो इस जीव का काम सहज में बनना शुरू हो जावे। मगर एक दिक़्क़त इस में भी है कि यह जीव उनको मिस्ल और ख़ुदमतलबियों के ठग और लोभी और दग़ाबाज़ समझता है और इस सबब से उनकी सरन क़बूल नहीं करता है और जो शख़्स कि हक़ीक़त में भोगी और रागी हैं और

(१) प्रेम।

दुनियाँ की गुलामी कर रहे हैं वे ऐसा मौक़ा देख कर याने जीवों को मूरख और भूले हुए जान कर आप गुरू बन बैठे हैं और रोज़गार अपना खूब जारी किया है और जिस क़दर उनसे हो सका इन ग़रीब और भूले हुए जीवों को लालच हासिल कराने धन और स्त्री और पुत्र और तन्दुरुस्ती और नामवरी का देके कि जिसकी चाह असली इनके मन में भी लगी हुई थी धोखे और भरम में डाला याने पत्थर और पानी और दरख़्त और जानवर पुजवा कर अपना मतलब किया और तीर्थों और बरतों और होम और यज्ञ में भरमाया और पुकार कर सुनाया कि एक ब्रत और एक तीर्थ ही करने में मोक्ष मिलेगी यह ख़्याल न किया कि जो अपना रोज़गार चलाया था तो कुछ मुज़ायक़ा नहीं पर

इन बेचारे ग़ाफ़िलों को सीधा रास्ता तो बतलाते कि जिस में इनका भी कुछ काम बनता सो इस रास्ते और जुगत की उनको आप ही ख़बर नहीं पढ़ने पढ़ाने और सुनाने में सब उस्ताद और होशियार हैं। श्रीकृष्ण महाराज ने जो ऊधोजी को उपदेश किया उससे साफ़ ज़ाहिर है कि हरचंद वह महाराज के संग और सेवा में बरसों रहा पर यह न हो सका कि उसको परम पद में अपने साथ ले जाते सो यही फ़र्माया कि पहले योग अभ्यास करो तब अधिकारी परम पद के होगे॥

ख़याल करना चाहिये कि जिस वक़्त सच्चे कृष्ण महाराज की सेवा और टहल और संग में ऊधोजी से प्रेमी क़ाबिल पहुँचने परम पद के बिना अभ्यास नहीं हुए तो जो लोग कि कृष्ण महाराज के स्वरूप की नक़ल पत्थर या धातु की

बनाकर उसकी सेवा और टहल में अपना वक़्त ख़र्च कर रहे हैं और सहज योग के अभ्यास और सतगुरु भक्ति से बिल्कुल ग़ाफ़िल हैं वह कैसे परम पद को पहुँचेंगे और इस पर भी यह हाल है कि गोसाईं और पुजारी से लेकर जात्रियों और पूजनेवालों तक कोई बिरला सच्चे दिल से निश्चय मूरत का दुरुस्त रखता है नहीं तो दुनियाँ की मूरत को याने माया और उसके पदार्थों को सब लोग पूजते हैं और पुजवाते हैं॥

३७—यही हाल तीर्थों का भी हो गया जोकि अगले महात्माओं ने वास्ते सतसंग और दान पुन्य के और एकांत स्थान में घर से दूर चंद रोज़ बिश्राम करने के लिये मुक़र्रर किये थे वह अब मेले और तमाशे होगये हर एक वास्ते अपने मन के आनंद और बिलास और दोस्तों

की मुलाक़ात और सैर और तमाशे और ख़रीदने तोहफ़े और असबाब के जाता है भजन बंदगी का कुछ ज़िक्र भी नहीं है। अब ऐसे लोगों को यह समझाया जाता है कि ज़रा ग़ौर करके देखो और अक़्ल से बिचारो कि ऐसी सूरत में तीरथ कब मुक्ति के दाता हो सकते हैं। ब्रत का भी थोड़ा बहुत यही हाल है कि बतौर त्योहार होगये; अगले महात्माओं ने तो वास्ते इंद्री और मन के दमन करने और जागरन और पूजन और सतसंग करने के मुक़र्रर किया था अब यह दिन वास्ते खेलने शतरंज और चौपड़ और गंजफ़ा और सोने रात और दिन और खाने अच्छे २ क़िस्म २ के मेवे और शीरीनी वग़ैरह के होगये॥

३८—जब कि मूरत पूजा में जो कि

वास्ते मज़बूत करने ध्यान और एकाग्र करने चित्त के अंतर में मुक़र्रर हुई थी यह ख़राबी हुई कि सिर्फ़ नाम मात्र के वास्ते आना जाना मंदिर का और सिर्फ़ हार फूल और जल चढ़ाना मूरत पर रह गया और पुजारियों ने उसको अपना रोज़गार समझ कर मंदिर में खेल और कूद और नाच व रंग और तमाशे और आराइश जारी किये और सतसंग जो कि मुख्य था उस का कुछ भी ख़याल नहीं किया और वास्ते ख़ुशी ख़ातिर पूजा करनेवालों के नये २ तमाशे और आराइश मंदिरों में कराने लगे और तीरथ बरत वग़ैरह में कारख़ाना बिल्कुल उलटा होगया यहाँ तक कि जो आज कल कोई तीरथ को न जावे और अपने घर पर भी नाम मालिक का न लेवे तो वह बहुत पापों और कुकर्मों

से बच रहता है और उनसे अच्छा है जो कि तीरथ करते हैं और तीरथ के स्थान पर अच्छे २ पदार्थ ताक़त के खाकर तमाशे देखते हैं और बेफ़ायदे कामों में वक़्त को ख़राब करते हैं और बड़ा अहंकार अपने दिल में तीरथ करने का रखते हैं इसवास्ते यह हालत आज कल के समय और मनुष्यों की देख कर संतों को अति कर दया आई, हरचंद कि लोगों को सच्चा परमार्थी और खोजी बहुत कम देखा फिर भी अपनी दया और मेहर से बचन और बानी के वसीले से सब को उपदेश परमपद का किया, और जिस २ ने उनके वक़्त में उनके बचन को चित्त से सुना और समझा और उस पर निश्चय किया और अभ्यास में लग गया उसको परमपद में पहुँचाया और बाक़ी सब लोगों के वास्ते

बानी कथकर रख गये कि जो कोई उस को पढ़कर समझैंगे वह भी क़दर संतों की जानकर वास्ते प्राप्ती असल मालिक के खोज संत सतगुरु पूरे का करैंगे और करम और भरम याने पूजा मूरत और पानी और जानवर और दरख़्त और देवताओं और औतारों से हटकर एक सच्चे मालिक के चरणों में जो कि सब का करतार और सब के परे है दृढ़ प्रीत और प्रतीत करके उसके चरणों का दर्शन हासिल करैंगे ॥

३९—थोड़े से नाम पूरे और सच्चे संतों के और सच्चे साध और फ़क़ीरों के जो पिछले सात सौ बरस में प्रगट हुए यहाँ लिखे जाते हैं—कबीर साहिब, तुलसी साहिब, जगजीवन साहिब, ग़रीबदासजी, पलटू साहिब, गुरुनानक, दादूजी, तुलसीदासजी, नाभाजी, स्वामी हरिदासजी,

सूरदास जी, और रैदास जी; और मुसलमानों में शमस् तबरेज़, मौलवी रूम, हाफ़िज़, सरमद, मुजद्दिद अलिफ़ सानी, इन साहिबों के बचन बानी देखने से हाल उनकी पहुँच और स्थान का मालूम हो सकता है॥

४०—संतों और फ़क़ीरों की पहचान यही है कि वे हमेशा इष्ट और अक़ीदा सच्चे मालिक का अंतर में दृढ़ करावेंगे, और बाहर मूरत और तीरथ और पोथी और किताब में नहीं भटकावेंगे और न देवता और औतार और पैग़म्बरों की पूजा में लगावेंगे और अभ्यास सहज जोग सुरत शब्द का कि इसके सिवाय दूसरा रास्तह सच्चे मालिक से मिलने का नहीं है बतलावेंगे और अपने वक़्त के पूरे सतगुरु की सेवा और प्रीत और प्रतीत का उपदेश करेंगे और

स्त्री और पुत्र और धन और मान बड़ाई की आशक्ती रोज़ ब रोज़ कम करा के खोजी और अनुरागी के हृदय में सच्चे मालिक की प्रीत और प्रेम को बढ़ावेंगे और वे आप भी हर वक़्त भजन और ध्यान में रहते हैं और अपने सेवकों को भी इसी काम में लगाते हैं और पिछले वक़्तों के धरम और करम और भरम और शक और शुबहे और इष्ट दूसरों का सिवाय सच्चे मालिक कुल के दूर करा देंगे और आहिस्ता आहिस्ता सब बंधनों अंतरी और बाहरी की असल को काट कर जीतेजी याने इसी देह में मालिक के चरणों में पहुँचा देंगे पर शर्त यह है कि उनके सतसंग और सेवा से हट न जावे और रोज़ ब रोज़ उनके चरणों में प्रीत और प्रतीत बढ़ाता जावे और जैसे वे फ़रमावें वैसे अभ्यास करता रहे ॥

४१—बंधन मुवाफ़िक़ बचन वशिष्ठजी के आठ तरह के हैं—पहिला बंधन इज़्ज़त और हुरमत ख़ानदान याने बंश का, दूसरा इज़्ज़त और हुरमत जाति का, तीसरा इज़्ज़त और हुरमत उहदे याने काम और हुकूमत का, चौथा लज्जा और ख़ौफ़ नेकनामी और बदनामी जगत का, पाँचवाँ मुहब्बत स्त्री और पुत्र और धन और माल का, छठा पक्षपात करना झूठे निश्चय और ओछे मत का, सातवाँ आसा और तृष्णा और जगत के भोग बिलासों की चाह, आठवाँ अहंकार ॥

४२—जिस महात्मा के सतसंग और सेवा से यह बंधन रोज़ब रोज़ ढीले और कम होते जावें और प्रीत और प्रतीत सच्चे मालिक के चरणों में दिन २ बढ़ती जावे तो यक़ीन करना चाहिये कि वे

रफ़्ते २ सब बंधनों से छुटा कर निज पद में पहुँचा देंगे, सिवाय इस के और कोई माक़ूल पहचान संत और साध की नहीं है और जो कोई यह इरादा करे कि संतों का हाल उन के लक्षण और चाल चलन को देख कर ग्रंथों की लिखी हुई बातों से मिलावे या उन से करामात चाहे या उन की और किसी तरह से परीक्षा और इम्तिहान करे तो यह बड़ी भारी ग़लती और नादानी है किस वास्ते कि इस तुच्छ जीव की क्या ताक़त है कि अपनी अल्प बुद्धी और ओछी अक़्ल और समझ से उन के ज्ञान और चाल ढाल को परख सके इस को तो सिर्फ़ अपने मतलब की बात पहिले देखनी चाहिये याने उन के दर्शन और बचन से जिस क़दर इस के दिल में शौक़ और अनुराग होवे उनकी पह-चान करे और सच्ची दीनता और ग़रीबी से

उनके सामने जावे और अहंकार और चतुराई से उन के साथ बरताव न करे और उनके तौर और तरीक़ और ब्यौहार में अपनी ओछी समझ को दख़ल न देवे और उस पर अपनी समझ न लगावे किस वास्ते कि संत जो काम करते हैं चाहे ज़ाहिर में वह लड़कों का खेल ही मालूम होवे पर वह कभी मसलहत से ख़ाली न होगा और ज़रूर उस में फ़ायदा और लाभ सब जीवों का मंजूर होगा जीव की अक़्ल वहाँ तक पहुँच नहीं सकती है कि जहाँ उस को नफ़े और नुक़सान की समझ आवे। इस सबब से बहुतेरे जीव अपनी नादानी और कमफ़हमी से उनकी चाल पर अभाव लाकर मुफ़्त अपना नुक़सान और हर्ज करते हैं याने उन की संगत से दूर हो जाते हैं॥

४३–संत नहीं चाहते कि बहुत सी

जमाअ़त और भीड़ भाड़ दुनियादारों की उनके दरबार में होवे वे सिर्फ़ ऐसे शख़्सों को चाहते हैं जो हक़ीक़त में शौक़ हासिल करने परमपद का रखते हैं और जिस की चाह दुनिया की है उन की सुहबबत से उन को निहायत नफ़रत है, इसी सबब से वे कोई शक्ती या कुदरत ज़ाहिरी अक्सर नहीं दिखलाते हैं कि उस को देखकर संसारी जीव बहुत भाव लावेंगे और संतों के और उनके सच्चे सेवकों के सतसंग और अभ्यास में ख़लल डालेंगे। जो कोई उनके बचन और ज्ञान को सुन कर निश्चय लाया उस को अलबत्ते करामात अंतरी याने नूर और प्रकाश सच्चे मालिक के दर्शन और जमाल का दिखलाते हैं और कुल उस के कारोबार में हमेशा तवज्जह अंतरी फ़र्माते रहते हैं तब वह उन को

करामात को अच्छी तरह देखता है और समझता है और फिर यक़ीन भी उस का मज़बूत होता जाता है और उन के चरणों में प्रीत भी रोज़ ब रोज़ बढ़ती जाती है ॥

४४—और जो संत सतगुरु आम तौर पर सतसंग जारी फ़र्माते हैं तो उन के दरबार में अक्सर फ़क़ीर और मोह-ताज भी आते जाते हैं और उन का आना जाना इस वास्ते मुनासिब और जाइज़ रक्खा है कि जो प्रेमी सेवक धन वग़ैरह की सेवा करें याने दुनियाँ के पदार्थ और धन उन की भेंट करें तो वे उस को ग़रीबों और मोहताजों को ख़ैरात कर देते हैं क्योंकि वे आप इन पदार्थों को अपने पास नहीं रखते हैं ॥

४५—जहाँ संत सतगुरु मौज से सतसंग जारी फ़र्माते हैं तो जान बूझ कर दो

चार बातें चाल ढाल में ऐसी प्रगट करते हैं कि जिन से दुनियादार नाराज़ हो जावें या तान और शिकायत करने लगें ताकि वे और और अहंकारी लोग सुनकर उन के दरबार में न आवें और सतसंग में ख़लल न डालें। उनके दरबार में कोई चौकी पहरा नहीं रहता कि बुरे और भले की पहचान करके रोक टोक करे इस वास्ते उनकी निन्द्या और शिकायत जो दुनियादार और अहंकारी लोग करें वही काम चौकीदारी का देती है याने संसारियों और अहंकारियों को दूर रखती है। ऐसे शख़्स शर्म और हया और ख़ौफ़ और तान दुनियादारों से वहाँ नहीं जाते और सिर्फ़ ऐसे शख़्स जो सच्ची चाहवाले याने खोजी सच्चे और पूरे परमार्थ के हैं वही लोग दुनियादारों का डर और

लाज छोड़ कर वहाँ पहुँचते हैं। सिवाय इसके यह निन्द्या एक तरह की परिक्षा मुमोक्षु याने शौक़ीन के वास्ते है यानी फ़ौरन मालूम हो जाता है कि वह शख़्स सच्चा परमारथी है या नहीं, जो सच्चा खोजी होगा तो वह कभी बदनामी और नेकनामी दुनिया और मूर्खों की तान से ख़ौफ़ न करके ज़रूर वास्ते हासिल करने अपने असली मतलब याने परमार्थ के हाज़िर होगा और जो झूठा है वह वहाँ नहीं पहुँचेगा ॥

४६—देखो दुनियादारों को जो वे दुनिया को सच्चे दिल से चाहते हैं किसी स्थान पर अपने मतलब हासिल करने के वास्ते जाने से नहीं रुकते और न ऐसी जगह दीनता करने से उनको शर्म आती है जैसे ब्राह्मण ग़ैर क़ौमों की

सेवा करते हैं और औलाद की बीमारी दूर कराने को भंगी तक के दरवाज़े पर जाने से परहेज़ नहीं करते और अपने इष्ट और मज़हब का ख़याल छोड़ कर बहुतेरे ऊँची ज़ातवाले शेख़सद्दो और सय्यदों की क़बरों को और अनेक मलीन देवताओं को और भूत पलीत को पूजते हैं। जब दुनियादार अपने दुनिया के काम के वास्ते अपने धर्म और कर्म को छोड़ देते हैं और परलोक के नुक़सान से नहीं डरते तो मालिक के चाहनेवालों की सच्ची चाह कैसे साबित होवे जो वे ज़रा सी निन्दा और मूर्खों की तान का ख़याल और ख़ौफ़ करके संतों के दरबार में हाज़िर नहीं होते इस से मालूम हुआ कि उन को सच्ची चाह नहीं है और दुनिया के कारोबार में इस क़दर दुख नहीं पाया, उसको इस क़दर अपना

दुशमन नहीं समझा है कि इलाज उस के दूर करने का करें और इस क़दर प्यास मालिक के दर्शनों की नहीं लगी है कि लोक लाज और दुनियादारों की तान को ताक़ पर रख दें, तो ऐसे शख़्स संतों के सतसंग के लायक़ नहीं हैं क्योंकि उन को पूरी ग़रज़ नहीं है कि संतों के हज़ूर में दीनता के साथ पेश आवें और अपने दुख की दवा लेवें ॥

४७–और मालूम होवे कि तान और तंज़ और निन्दा संतों के सेवकों को भी पक्का और दुरुस्त करती है जो निन्दा और बदनामी न होवे तो वह जैसे के तैसे कच्चे रहेंगे निन्दा और बदनामी निशान सच्चे प्रेम का है और सिवाय आशिक़ों याने सच्चे भक्तों के दूसरे की ताक़त नहीं कि दुनिया की बदनामी से बेख़ौफ़ होवे। फ़ारसी में कहा है–

मलामत शहनए बाज़ारे इश्क़ अस्त।
मलामत सैक़ले ज़ंगारे इश्क़ अस्त॥

याने निन्द्या और हँसी प्रेम के बाज़ार की कोतवाल है और मैल और काई की सफ़ाई करनेवाली है। जो गुरु कि दुनिया के चाहनेवाले हैं वह दुनिया और दुनियादारों को निहायत दोस्त रखते हैं और उन को प्यार करते हैं और उनकी सब प्रकार से ख़ातिरदारी करते हैं और तरक़्क़ी और हुरमत चाहते हैं और बड़ा ख़याल इस बात का रखते हैं कि उनके सेवक नाराज़ न हो जावें ताकि उनके रोज़गार और जीविका में ख़लल न आवे। बरख़िलाफ़ इसके संत जोकि सच्चे और पूरे आशिक़ मालिक कुल के हैं ख़्वाहिशमंद इस बात के रहते हैं कि दुनियादार उनके सतसंग को न छेड़ें और अपना साया उनके सेवकों

पर न डालैं इस वास्ते ज़रूर मलामत और निन्द्या को अज़ीज़ रखते हैं कि वही काम चौकीदार का देती है और ऐसे लोगों को उनके दरबार से हटाये रखती है ॥

४८—और मालूम होवे कि संतों का यह दस्तूर है कि जब कोई उन के पास आवे तो उस को उपदेश या उस के सामने चरचा सत्य बस्तु याने सत्य पुरुष राधास्वामी का करते हैं और बाक़ी औरों को नाशमान और ओछा कहते हैं। इसी बात को नादान और मूर्ख लोग निन्द्या और हजो देवताओं और औतारों और पैग़म्बरों की समझ कर उनको निन्दक कहते हैं और यह नहीं ख़याल करते कि जो उन्हों ने ब्रह्मा विष्णु और महादेव और देवताओं और औतारों और पैग़म्बरों को ओछा बतलाया तो फिर तारीफ़

किसको की और सब से बड़ा किसको ठहराया। जो उन्हों ने तारीफ़ सतपुरुष और परमपुरुष पूरन धनी राधास्वामी की की तो यह बात मानने योग्य है क्योंकि जो सब से बड़ा और मालिक कुल का है उसकी तारीफ़ करना और उस के चरणों में प्रतीत और एतक़ाद दिलाना और उसकी सेवा पूजा के वास्ते उपदेश करना ज़रूरी काम है और निहायत मुनासिब क्योंकि बग़ैर इस के जीव का उद्धार मुमकिन नहीं; फिर समझना चाहिये कि किस क़दर शर्म की बात है कि कुल मालिक की बड़ाई को सुन कर नाराज़ होना और अपनी मूर्खता से असल मतलब को न समझ कर बरख़िलाफ़ संतों के बचन के क़दर करने के उसको बुरा समझना और संतों को निन्दक ठहराना ॥

४९—वेद और शास्त्र भागवत और पुराण वग़ैरह ने अवध याने उमर ब्रह्मा और विष्णु और शिव और देवताओं की लिखी है और औतार भी जो संसार में आये वह भी संसार को छोड़ कर चले गये तब उनकी देह रूप का और ब्रह्मा विष्णु और शिव वग़ैरह की देह का नाशमान होना साफ़ ज़ाहिर है और जब यह रूप नाशमान साबित हुए तो उनके इस स्वरूप की नक़ल को अविनाशी समझना या उसका इष्ट या निश्चय बाँधना किस तरह दुरुस्त हो सकता है अगर उनके निज रूप का भेद लेकर उसका ध्यान करते और उसमें इष्ट बाँधते तो भी कुछ थोड़ा सा फ़ायदा होता और नक़ली स्वरूप में तो कुछ भी हासिल नहीं। इसमें साफ़ ग़लती अवाम की पाई जाती है और जो संत उसको

दूर करना चाहते हैं तो लोग अपने अहंकार और मूर्खता से उनको निंदक कहते हैं ख़ास कर रोज़गारी लोग मिस्ल पंडित और भेष के ज़रूर बुराई करने को तैयार होते हैं ॥

५०—जो कोई यह कहे कि हम औतारों के उस रूप और पद की उपासना करते हैं जो असल रूप है याने जहाँ से औतार प्रगट हुए हैं तो यह कहना उनका दुरुस्त है पर इस क़दर फिर भी बिचार करना चाहिये कि जो उस रूप या पद की पूजा और इष्ट इख़्तियार किया तो इससे उस पद की पूजा और इष्ट क्यों नहीं इख़्तियार करते जहाँ से औतारों का असली पद पैदा हुआ मेहनत और तरीक़ा दोनों पद की पूजा का बराबर है पर उनके फल और फ़ायदे में भेद है इस वास्ते सब

से बड़े और ऊँचे पद की पूजा और इष्ट मुनासिब है और यही संतों का इष्ट है और इसी को संत उपदेश करते हैं इस उपदेश से यह ग़रज़ नहीं कि और स्थानों के मालिक से विरोध और ईर्षा इख़्तियार करना चाहिये बल्कि सत्तपुरुष राधास्वामी के इष्ट वाले को भी धारना हर एक पद की जो कि उसके रास्ते में पड़ेंगे करनी पड़ेगी बिना इसके वह स्थान फ़तह न होवेंगे लेकिन इस राह में चलने से पहिले इष्ट अपना धुर और निज स्थान का दुरुस्त करना चाहिये और हर एक स्थान के हाल और कैफ़ियत को बख़ूबी समझ लेना चाहिये किस वास्ते कि दुनियाँ में भट-काने वाले और भरमाने वाले बहुत हैं और खुदा और परमेश्वर और परमात्मा और ब्रह्म और पारब्रह्म और

शुद्ध ब्रह्म और सत्तनाम कहनेवाले भी बहुत हैं पर असल में इल्मी ज्ञान भी इन पदों का जैसा कि चाहिये और उन मुक़ामात का जोकि इनके रास्ते में पड़ते हैं तफ़सीलवार नहीं रखते ऐसे शख़्स हमेशा धोखा खाते हैं और मालूम नहीं होता कि वे किस स्थान के धनी याने मालिक को ब्रह्म और ख़ुदा और सत्तनाम कहते हैं इस वास्ते संतों ने दया करके मुमोक्षू को पहिले पहचान स्थानों की कराई और फिर इष्ट सत्तपुरुष राधास्वामी का दृढ़ कराया जो कि सब से ऊँचे और आख़री पद हैं और फिर अभ्यास रास्ते पर चलने का बतलाया इस तौर से अभ्यासी मंज़िल तक पहुँच सकता है और सब स्थानों की कैफ़ियत और हक़ीक़त भी जान सक्ता है और अपने पूरे और सच्चे मालिक

की ठीक २ समझ लेकर और जिस क़दर कि पहचान उसकी यहाँ हो सकती है करके अभ्यास शुरू कर सकता है और जो भेद नहीं मिला और पहचान और समझ नहीं आई तो मालिक के चरणों में न तो सच्ची प्रीत पैदा होगी और न उसकी रोज़ बरोज़ तरक्की होगी और न धुर तक पहुँचने की ताक़त होगी कहीं न कहीं रास्ते में किसी मुक़ाम पर धोखा खाकर ठहर जावेगा ॥

५१—औतारों और देवताओं के मालिक न होने की निसबत तो इस क़दर कहना ही काफ़ी है कि ये बाद रचना के कोई द्वापर और कोई त्रेता जुग में प्रगट हुए तब ग़ौर करना चाहिये कि इन के प्रगट होने से पहिले यानी सतजुग में किसकी पूजा होती थी और किस के वसीले से लोग परमपद हासिल करते थे उस

वक़्त में उपासना ख़ास हिरण्यगर्भ की जिस को प्रणव याने ओंकार कहते हैं जारी थी और उसी का ज़िक्र वेद के उपनिषदों में लिखा है। फिर क्या वजह कि उस उपासना को छोड़कर इस वक़्त में लोग मूरत और तीरथ में उलझ गये गंगा जी भी भागीरथ के समय से जारी हुईं पहिले नहीं थीं तो उस समय में कौनसा तीरथ क़ाइम था। ग़रज़ यह कि यह जितनी पूजा अब इस समय में जारी हैं नई प्रगट की हुई द्वापर त्रेता और क़लियुग की हैं। असल पूजा मालिक कुल की है कि जो संतों के मत के मुवाफ़िक़ सब इख़्तियार कर सक्ते हैं। पर औतार और पैग़म्बरों की पूजा उसी देश में जारी होगी जहाँ वे पैदा हुए और दूसरी जगह उनको न कोई जानता है और न मानता है॥

५२—और जो कि औतारौं और पैग़म्बरौं ने जो अपने वक़्त मैं अपने असल पद को जहाँ से वे आये थे मालिक क़रार दिया या ख़ुद आपको मालिक का भेजा हुआ या उसका प्यारा बतलाया और लोगौं से अपने तईं पुजवाया या अपना इष्ट बँधवाया तो यह बात ग़लत न थी पर इस सूरत मैं सिर्फ़ उन्हीं लोगौं का गुज़ारा हुआ जो कि उनके वक़्त मैं मौजूद थे उनको अपने पद की मुक्ती उन्हौंने बख़्शी पर जो लोग कि उनके बाद उनके मत मैं आये उन्हौं ने सिर्फ़ टेक उन के नाम की बाँध ली और उनके तन मन की हालत नहीं बदली तो इस टेक से कभी मुक्ती प्राप्त नहीं हो सकती। यही हाल संतौं के इष्टवालौं का भी समझना चाहिये कि जो जो शख़्स कि संतौं के रूबरू आये और उनके चरणौं मैं सेवा

और भक्ती की और उनसे उपदेश लिया वह बेशक अधिकारी मुक्ती के हुए और जो पीछे हुए और उन्हों ने सिर्फ़ इष्ट या टेक संतों की बाँधली और अपने वक्त का पूरा गुरू याने संत या कि पूरा साध न खोजा और जो मारग याने रास्ता और तरीक़ा अभ्यास का कि संतों ने मुक़र्रर फ़र्माया है उस पर न चले तो वह भी और मतवालों की तरह से अधिकारी मुक्ती के नहीं हो सकते जैसा कि और लोग मूरत या तीरथ और पोथी और ग्रंथों की पूजा में लगे हैं ऐसे ही जो संतों के घर के जीव भी पूजा समाध और झंडा और ग्रंथ वग़ैरह में लग गये और संतों के निज स्वरूप और उनके पद का भेद और हाल रास्ते का और तरीक़ अभ्यास का मालूम नहीं हुआ और बाहरमुखियों की तरह सिर्फ़ समाध और ग्रंथ वग़ैरह की

टेक बाँध ली तो वे भी और मतों के बाहरमुखी पूजा करनेवालों की तरह करम और भरम में अटक गये और मुक्ती की प्राप्ती उनको भी नहीं हुई। असल संतपंथी वह है कि जो उनके हुकम के मुवाफ़िक़ अभ्यास करे और रास्ते की मंज़िलें पार करके स्थान सत्तपुरुष राधास्वामी में पहुँचे या चलना उस रास्ते पर शुरू कर दे तो वह बेशक एक दिन सच्ची मुक्ति को प्राप्त हो जावेगा। खुलासा यह है कि जो पिछले महात्माओं या औतारों या पैग़म्बरों या देवताओं का सिर्फ़ इष्ट धारन करने को उनका मत समझेगा उसका कभी छुटकारा नहीं होगा॥

५३—जो सच्चा खोजी है उसको चाहिये कि अपने वक़्त के पूरे संत या पूरे साध का खोज करे याने पूरे सतगुरु जहाँ

मिलैं उनका संग करे और उन्हीं में सब देवता और औतार और महात्मा और संत और साध पिछलों को मौजूद समझ कर तन मन से सेवा और प्रीत और प्रतीत करके अपना काम उनसे बनवावे। जैसे कि पिछले बादशाह चाहे बड़े मुंसिफ़ और दाता हुए पर उनके हाल सुनने से या उनके नाम लेने से हमको दौलत और हुकूमत और उहदा नहीं मिल सकता है जो हमको उसकी चाह है तो चाहिये कि अपने वक़्त के बादशाह से मिलैं तब अलबत्ता काम हमारा बनेगा नहीं तो ख़राबी और हैरानी के सिवाय और कुछ हासिल नहीं होगा मौलवी रूम कहते हैं—

"चूँकि करदी ज़ाते मुर्शिद रा क़बूल ।
हम ख़ुदा दर ज़ातश आमद हम रसूल ॥"

याने पूरे सतगुरु और मालिक में भेद नहीं है और मुर्शिद में और सतगुरु

में मालिक और औतार सब आ गये याने जो मालिक से मिलना चाहते हो तो फ़ुक़रा याने संतों में सतगुरु का खोज करना चाहिये और यह ज़रूर नहीं कि संत कपड़े रँगे हुए को कहते होवें संत उनको कहते हैं जो सच्चे मालिक से सत्य-लोक में पहुँच कर मिल गये चाहे वह गृहस्थ में होवें या बिरक्त चाहे ब्राह्मण होवें या और कोई जाति में होवें मालिक का दीदार दुनिया में और कहीं नहीं है या तो अपने अंतर में या पूरे साध और पूरे संत में जो कि कुल जगत के क़ुदरती गुरु हैं और खोजनेवालों को इन्हीं दो स्थान पर दर्शन मालिक का प्राप्त होगा और मूरत तीरथ ब्रत और चार धाम और मंदिरों में कहीं पता और निशान उस का नहीं मिलेगा मौलवी रूम कहते हैं:—

मस्जिदे हस्त अंदरूने औलिया।
सिजदागाहे जुमला हस्त आंजा खुदा॥

याने महात्माओं के अंतर में मंदिर और मस्जिद है और वहीं जो कोई मालिक और ख़ुदा को सिजदा[1] करना चाहे मत्था टेके और यह भी कहा है किः—

गुफ़्त पैग़म्बर कि हक़ फ़रमूदः अस्त।
मन न गुंजम हेच दर बाला व पस्त॥
दर दिले मोमिन बिगुंजम ईं अजब।
गर मरा ख़ाही अज़ाँ दिलहा तलब॥

यानें ख़ुदा ने पैग़म्बर साहिब से कहा कि मैं कहीं नहीं रहता हूँ न आसमान में और न ज़मीन में पर अपने प्रेमी भक्तों के हृदय में रहता हूँ जो मुझ को चाहे वहाँ जाकर उनसे माँगे। इस वास्ते हर एक सच्चे चाहने वाले मालिक के को मुनासिब है कि अपने वक़्त का सतगुरु खोज कर उन से उपदेश लेवे और उन्हीं के

(१) दंडवत करना।

चरनौं में तन मन धन से सेवा और प्रीत और प्रतीत करे थोड़े ही अरसे में उस का काम बन जावेगा। संस्कृत में भी कहा है:—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुगुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

श्रीकृष्ण महाराज ने भी भागवत और गीता में लिखा है कि जो कोई मुझ से मिला चाहे और मेरी सेवा और प्रीत करना चाहे तो मेरे जो प्रेमी जन साध और भक्त हैं उनकी जो सेवा करेगा वह मेरी सेवा है और मैं उससे प्रसन्न होऊँगा और वही मेरा प्यारा है जो मेरे सच्चे भक्तों से प्रीत करता है और न मैं आकाश में रहता हूँ और न पाताल में और न मैं स्वर्ग में रहता हूँ और न बैकुंठ में जो साध और भक्त जन मेरे प्रेमी हैं उनके हृदय में मेरा निवास है॥

५४—और मालूम होवे कि संत सतगुरु ने जो नर स्वरूप धारण किया है वह दिखलाने के वास्ते है पर असली स्वरूप उनका मालिक के स्वरूप से मिला हुआ है किस वास्ते कि वह हर वक्त सच्चे मालिक याने सत्तपुरुष के आनंद में मगन रहते हैं और सच्चे खोजी को जब तक कि अपने अंतर में निज स्वरूप के दर्शन प्राप्त न होवें तब तक सतगुरु के ही स्वरूप को मालिक का स्वरूप समझे और उनके चरनों में प्रीत और प्रतीत बढ़ाता जावे और जब उसको अंतर में निज दर्शन प्राप्त हुआ फिर वह सच्चे मालिक याने पूरे सतगुरु के चरनों में मिल गया और सतगुरु का स्वरूप हो गया और उसी का काम पूरा हुआ इस से समझना चाहिये कि जिसका काम बना है या बनेगा अपने वक्त के सतगुरु की प्रीत और सेवा और सतसंग से बना

है। और पिछले संत और गुरू व औतार और पैग़म्बर व देवता उपदेश नहीं कर सकते और न अपना निज रूप दिखा सकते हैं इस सबब से उनमें खोजी को सच्ची प्रीत और प्रतीत नहीं हो सकती है और जो किसी को प्रीत सच्ची भी हुई तो वह जैसा है वैसा ही रहेगा अलबत्ता थोड़ी सफ़ाई अंतर की हो जावेगी लेकिन रूह याने सुरत का स्थान नहीं बदलेगा याने चढ़ाई सुरत की नहीं होगी फिर ऐसी मिहनत और दिक़्क़त से जो कुछ प्राप्त हुआ तो सुरत तो बदस्तूर स्थान मलीन पर ठहरी रही यह सफ़ाई क़ाइम नहीं रहेगी किस वास्ते कि इस स्थान पर माया का चक्र चल रहा है जब ज़ोर करेगा तब ही वह शख़्स अपनी प्रीत और प्रतीत से गिर जावेगा और भोगों के स्वाद और रस में फँस जावेगा

और यह मुमकिन नहीं है कि किसी को निज स्वरूप का ज्ञान हासिल होवे या उसके बिकार बिलकुल दूर होजावें जब तक कि सतगुरु पूरे की सेवा और सत-संग करके उनकी दया और मेहर हासिल नहीं करेगा। बिना वक़्त के सतगुरु के बहुत से संशय और शुबहे हैं कि उनकी इस मनुष्य को ख़बर भी नहीं पड़ती और यह अपने मन में जानता है कि मेरे कोई संशय बाक़ी नहीं रहा पर जब संतों के सतसंग में आवे तब मालूम पड़े कि किस क़दर संशय और शुबहे बाक़ी हैं और सच्चा प्रेम और प्रतीत हासिल होना किस क़दर मुश्किल है और धुर पद किस क़दर दूर और दराज़ है ख़ुलासा यह कि सच्चा प्रेम और परमार्थ का प्राप्त होना बिना कृपा और मदद अपने वक़्त के पूरे सतगुरु के किसी तरह मुमकिन

नहीं है। औतार भी जो दुनिया में आये उनको भी गुरू धारन करना पड़ा और सुकदेवजी से ज्ञानी जिनको माता के गर्भ में ज्ञान प्राप्त हुआ था बे उपदेश गुरू के क़दम न बढ़ा सके और ख़ुद नारद जी ने जिनको ताक़त बैकुंठ तक आने जाने की हासिल थी तो भी बग़ैर गुरू धारन किये हुए वहाँ विश्राम पाने की गति नहीं हुई फिर इस जीव की क्या ताक़त है कि बिना मेहर सतगुरू पूरे अपने वक़्त के सच्चे परमार्थ के रास्ते में क़दम उठा सके॥

५५—बाज़े वेद और शास्त्र और ग्रन्थ को गुरू मानते हैं और इस में शक नहीं है कि उनके देखने से बहुतसा हाल मालूम होता है पर जो कोई सिर्फ़ इन के पढ़ने और सुनने में रहा और खोज सतगुरू का न किया तो वह भी नादान

और मूरख है किस वास्ते कि जो भेद और तरीक़ा अभ्यास का सतगुरु वक़्त से मालूम हो सकता है वह लिखने में नहीं आसकता है और न उसका ज़िक्र पोथियों और शास्त्र में लिखा है सिर्फ़ उस में इशारे किये हैं और वह गवाही के वास्ते काफ़ी हैं बाक़ी गुरू और मुर्शिद पर रक्खा है पोथी पढ़ने से विद्या आवेगी पर रास्ता सच्चे मालिक से मिलने का नहीं मालूम होगा इस वास्ते पोथी और शास्त्र मदद-गार हैं और दुरुस्ती ब्योहार की थोड़ी बहुत उनके पढ़ने और समझने से हो सक्ती है यानें उन से इतना मालूम हो जावेगा कि यह काम बुरा है और यह काम अच्छा है और जो कोई दर्दी और परमार्थी है वह बुरे काम को छोड़ता जावेगा और जो अच्छा काम है उसको करना शुरू करेगा। पर मन का नाश होना

और कुल बिकारों का दूर होना बिना मेहर और दया सतगुरु पूरे के नहीं हो सकता है और जब तक मन बाक़ी है तब तक बीज बुराई और बिकारों का मौजूद है अगर इस दरख़्त की डाली और पत्ते झड़ गये तो क्या जब तक बीज मौजूद है तो जब कभी माया के भोग और उनके स्वादों का रस मिलेगा तो डाली और पत्ते सब हरे हो जावेंगे और नई नई डालियाँ पैदा हो जावेंगी इस वास्ते समझना चाहिये कि वेद और शास्त्र और पोथी से कुछ भेद मालिक का और गवाही वास्ते सतगुरु की पहिचान के मिल सकती है और कुछ बुराई और भलाई और पाप और पुन्य की पहिचान भी हो जावेगी सिवाय इसके और ज़ियादा फ़ायदा उन से नहीं हो सकता है और असल और सच्चे परमार्थ

का हासिल होना तो सिर्फ़ सतगुरु पूरे से होगा और ऐसे गुरू का खोज करना सच्चे खोजी को ज़रूर है। जो पिछलों की टेक बाँधकर चुप हो रहे वह सच्चे ख़्वाहिशमंद मालिक से मिलने के नहीं हैं और इस वास्ते वह उस का दर्शन भी नहीं पावेंगे॥

५६—सतगुरु पूरे को खोज करके धारन करना चाहिये और पूरे सतगुरु वही हैं जो सत्तलोक में पहुँचकर सत्तपुरुष से मिल रहे हैं। उन्हीं को संत कहते हैं और वे जब मिलेंगे तब सिवाय सुरत शब्द मारग के दूसरा उपदेश नहीं करेंगे और घट में रास्ता और भेद स्थानों का लखावेंगे और सुरत यानी रूह को सतगुरु के स्वरूप और शब्द के आसरे अंतर में चढ़ाने की ताकीद करेंगे और उनके सत-संग और बानी में भी इसी भेद का ज़िक्र

और महिमा सतगुरु सत्तपुरुष और उन के शब्द स्वरूप की और हाल रास्ते और कैफ़ियत अनुराग और प्रेम और बैराग वग़ैरह की बर्णन होगी और जहाँ कहीं सतसंग में क़िस्से कहानी और लीला पिछलों की बर्णन होवे या सिर्फ़ बैराग पर ज़ोर दिया जावे और अंतर का भेद या जुगत मन के स्थिर करने और चढ़ाने का कुछ ज़िक्र भी न होवे तो संतों के बचन के अनुसार उसका नाम सतसंग नहीं है क्योंकि सतसंग के अर्थ ये हैं कि जहाँ कहीं सत्त याने सत्तपुरुष का संग होवे सो संत ख़ुद सत्तपुरुष स्वरूप हैं उनका संग सतसंग है और जो उन की बानी और बचन हैं उन में या तो महिमा सत्तपुरुष राधास्वामी और उन के संत सतगुरु स्वरूप की बर्णन की है या जुगत उनके निज रूप और निज धाम

के प्राप्ती की या ज़िक्र प्रेम और प्रतीत का उनके चरनों में और उनके शब्द की धुन में या उस हालत का जो अनुरागी अभ्यासी को रास्ते में मुक़ाम २ के पहुँचने पर हासिल होती है बर्णन किया है तो ऐसी बानी और बचन का सुनना और उसको बिचारना और उसको धारन करना और अंतर में उनके चरन अथवा शब्द में मन और सुरत को जोड़ना यह सतसंग है। और मालूम होवे कि हर मत के पिछले ग्रन्थों में जगह २ निहायत महिमा सतसंग की करी है कि ज़रा से सतसंग से भी कोट जन्म के पाप कटते हैं और जीव का कल्याण होता है सो इसकी पहचान जो कोई चाहे सतगुरु के संग में याने चाहे उनके चरनों में रह कर बानी बचन सुने और दर्शन करे और चाहे उनके अभ्यास में मन और

सुरत को जोड़कर परख लेवे, सो जो कोई ऐसी पहचान करेगा उसको आप इस बात की सचौटी की प्रतीत हो जावेगी और वह आप देख लेगा कि थोड़े दिनों के संग से और थोड़े अरसे अंतर में संतों की जुगत की कमाई करने से क्या फल प्राप्त होता है ॥

५७—बड़ा अफ़सोस आता है कि आज कल बहुत से जीव ऐसे लोगों की बड़ी महिमा समझते हैं जो कि तप करते हैं याने पंचअगिन तपते हैं या हाथ सुखाये फिरते हैं या जल में खड़े रहते हैं या मेख़ और कीलों पर बैठते हैं या रात दिन मैदान में नंगे बैठे रहते हैं या खड़े रहते हैं या और किसी तरह अपनी देह को दुख देकर तमाशा दिखाते हैं या अन्न की ग़िज़ा छोड़कर सिर्फ़ दूध पीते हैं या रात भर या दिन भर पाठ

करते रहते हैं या गुफा मैं बैठकर सुमिरन और ध्यान करते हैं या जंगल और पहाड़ मैं जाकर बसते हैं या मौन धारन करते हैं और किसी से नहीं बोलते हैं या और अनेक तरह के पाखंड दिखाते हैं । इन लोगों की ज़ाहिरी हालत बड़ी आश्चर्य रूप दिखाई देती है कि उससे देखनेवाले के चित्त मैं उनकी बड़ी महिमा समाती है पर जो उन से चरचा या बचन किये जावैं तो हाल उनका मालूम पड़े कि किस मतलब से या कौन सी चाह लेकर या किस मज़े के वास्ते या किस वजह से यह काम उन्हों ने इख़्तियार किये हैं तब असल हाल उनका दरियाफ़्त हो जावेगा कि वह सच्चे परमार्थी हैं या कपटी हैं या पाखंडी । अब समझना चाहिये कि सच्चा परमार्थी कौन है और कपटी और स्वार्थी कौन है। सच्चा

परमार्थी वह है जो कुल काम वास्ते इस मतलब के करता है कि सच्चे मालिक का दर्शन मिले और वह उस पर इस क़दर मेहरबान होवे कि निज धाम में बासा देवे ताकि हमेशा का आनन्द प्राप्त होवे और आवागवन के सुख दुख से छूट जावे सिवाय इसके दूसरी चाह इसके अंतर में नहीं है। और कपटी और स्वार्थी और पाखंडी का यह हाल है कि जो काम वे करैं इस मतलब से करैं कि जिस में उन की मान और प्रतिष्ठा और पूजा होवे और राज और धन और भोग मिलैं और सब लोग उनकी स्तुति करैं और बड़ा मानैं, चाहे इस लोक के भोग और मान की चाह होवे चाहे स्वर्ग व बैकुंठ और ब्रह्म लोक की, इन दोनों में कुछ बहुत फ़र्क़ नहीं है क्योंकि एक जगह के भोग जल्दी नाश होते हैं और दूसरी जगह के देर बाद और चाहे कोई

स्वर्ग और बैकुंठ और चाहे ब्रह्म लोक में पहुँचे और मृत्युलोक में रहे दोनों जगह काल और माया के पेट में हैं, सच्ची मोक्ष नहीं हो सकती, वह बार-म्बार जन्मेगा और मरेगा और दुख सुख भोगना पड़ेगा। कृष्ण महाराज ने अर्जुन को इशारा तरफ़ एक चींटे के करके कहा कि यह बहुत बार ब्रह्मा हो चुका है और बहुत बार इन्द्र और इसी तरह और २ बड़ी २ गति पा चुका है अब इस जन्म में चींटा हुआ है। अब समझना चाहिये कि जब ब्रह्मा और इन्द्र चौरासी के चक्कर से नहीं बचे फिर जो जीव कि उनके लोक की आशा बाँधकर अभ्यास करते हैं वह कैसे अमर होंगे और चौरासी के चक्कर से कैसे बचेंगे इस वास्ते जो कोई कि ऐसे कर्म कर रहे हैं जैसे होम और यज्ञ और तीर्थ और ब्रत और

मूरत पूजा और चार धाम परिक्रमा, और जो जीव कि भक्ती कर रहे हैं जैसे भक्ती सूर्य और चंद्रमा की या गणेश और शिव और विष्णु और ब्रह्मा और शक्ती की या औतार स्वरूप ईश्वर की उन सबकी गति ईश्वर के लोक याने बैकुंठ से ज़ियादा नहीँ हो सकती और ऐसी भक्ती करके अपने २ उपास्य के लोक में याने सूर्यलोक चंद्रलोक स्वर्गलोक शिवलोक विष्णुलोक शक्तिलोक ब्रह्मलोक और बैकुंठलोक वग़ैरह में पहुँच कर और वहाँ कुछ अरसे बास करके फिर मृत्युलोक में जन्मेंगे और फिर चौरासी के चक्कर में आवेंगे और जो कोई और छोटे देवताओं की भक्ती कर रहे हैं उनका तो कुछ ज़िक्र ही नहीं है वह तो इसी मृत्युलोक में उस का फल पाकर याने कुछ माया का सामान या

सिद्धी और शक्ती हासिल करके फिर चौरासी के चक्कर में आवेंगे ॥

५८—ऐसे लोग जो कि ब्रह्मज्ञानी अपने को कहते हैं आज कल बहुत हैं और अपने को सब से उत्तम जानते हैं। ब्रह्मज्ञान हक़ीक़त में इन सब अभ्यासों से जिनका ज़िक्र पीछे हुआ बहुत बड़ा है पर जो सच्चा होवे, और जो पोथियाँ पढ़ कर ज्ञान हुआ उस का नाम विद्या ज्ञान है उस से मोक्ष कभी हासिल नहीं होगी क्योंकि ज्ञान के ग्रन्थों में जगह २ लिखा है कि "तत्त्वज्ञान मनोबासना नाश," याने जब तक कि मन और बासना का नाश न होगा तब तक तत्त्व याने मालिक का ज्ञान हासिल न होगा, और मन और बासना का नाश बिना योगाभ्यास के मुमकिन नहीं है, फिर जब तक कि जोग की साधना नहीं करे तो वह ज्ञान बाचक

है, इस क़दर तो हर एक शख़्स जिस को विद्या हासिल हुई कह सकता है और समझ सकता है फिर इस में क्या बड़ाई हुई और मन और इन्द्रियों का क्या दमन हुआ। आज कल जो अपने तईं ब्रह्मज्ञानी कहते हैं जो उनसे पूछा जावे कि कहो क्या साधना करके तुमने ज्ञान पाया तो नाराज़ हो जाते हैं, बाज़े कहते हैं कि पिछले जन्म में कर आये, जो यह बात सही होती तो उनको साधना की जुक्ती की ख़बर होती याने याद ज़रूर होनी चाहिये थी क्योंकि ब्रह्मज्ञानी और ब्रह्म में कुछ भेद नहीं है, यह कहा है कि "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" और दूसरा "इज़ातमउल फ़क़र फ़हो अल्लाहो", फिर सूफ़ी या ज्ञानी को सब हालतों की ख़बर होनी चाहिये और इन ब्रह्मज्ञानियों का यह हाल है कि इनको अपने मन और

इन्द्रियाँ की भी ख़बर नहीं कि वे क्या२ काम उनसे करा रही हैं, ऐसी सूरत में अपने को ज्ञानी कहना और ब्रह्म मानना यह उनकी बड़ी भूल मालूम होती है और इसका फल वही है जो कर्मियों को मिलेगा याने चौरासी का चक्कर भोगना पड़ेगा॥

५८—जो पिछले वक़्तों में ज्ञानी हुए जैसे कि व्यास और वशिष्ठ और राम और कृष्ण वे सब जोगीश्वर ज्ञानी थे और प्रकाशक थे और चारों साधन उन के पूरे हुए थे और इस वास्ते वे यह क़ैद लगा गये कि जिसमें यह चार साधन नहीं हैं वह ज्ञानी नहीं हो सक्ता बल्कि ज्ञान के ग्रन्थों के पढ़ने का अधिकारी भी नहीं है, और वह चार साधन यह हैं—पहिला बैराग्य, दूसरा बिबेक, तीसरा षटसम्पत्ती (इसमें छः साधन हैं पहिला सम दूसरा

दम तीसरा उपरती चौथा तितिक्षा पाँचवाँ श्रद्धा छठा समाधानता) और चौथा मुमोक्षता। आज कल के ज्ञानियों में इन में से एक साधन भी नज़र नहीं आता, उन्हों ने घर त्यागने को बैराग समझा और पोथी पढ़ने और बिचारने को बिबेक और षट्सम्पत्ती को भी ऐसे ही अपने में घटा लिया कि देर अबेर भूख प्यास की बरदाश्त है सर्दी गर्मी की भी थोड़ी बहुत बरदाश्त कर लेते हैं कभी इन्द्री और मन भी वक्त पढ़ने और बिचारने पोथियों के रुक जाते हैं और ज्ञानियों से मिलना और ज्ञान के ग्रन्थों के पढ़ने और पढ़ाने के शौक़ को मुमोक्षता समझ लिया, जब यह समझ है तो अब उनसे क्या कहा जावे इस मूर्खता पर अफ़सोस आता है कि मेला और तमाशा और सैर देशान्तर की और नामवरी के

वास्ते भंडारे करने और झंडा खड़ा करके ग़ोल बाँधने वग़ैरह की तो इनके चित्त में ऐसी लाग है कि रेल के ख़र्च के और भंडारे के ख़र्च के लिये अदना २ गृहस्थियों के रूबरू दीन होकर और राजों और साहूकारों से रुपया लेकर जोड़ते हैं और फिर अपने तईं बैरागवान कहते हैं इस से ज़ाहिर है कि उनको बैराग के स्वरूप और अवधी की ज़रा भी ख़बर नहीं है और पोथियाँ पढ़ने और पढ़ाने का शौक़ नित्य बढ़ता जाता है तो आश्चर्य आता है कि यह कैसा ब्रह्मआनंद इनको प्राप्त हुआ कि जिस से ज़रा भी मन इनका नहीं बदला और जो पूछो तो कहते हैं कि यह काम हम उपकार के वास्ते करते हैं यह कहना उनका साबित करता है कि उनको यह भी मालूम नहीं है कि उपकार किस का नाम है। जो कोई ज्ञानी

है वह जीवौं के कल्यान करने के लिये समर्थ होना चाहिये जीवौं को बंद से छुड़ाकर मोक्ष पद में पहुँचाना इसका नाम उपकार है और विद्या पढ़ाकर लोगौं को अहंकारी बनाना और खाना खिलाना और मंदिर और बाग़ और धर्मशाला बनाना और सदाबर्त लगाना इस का नाम उपकार नहीं है ऐसे उपकार के वास्ते तो साहूकार और राजे पैदा किये गये हैं न कि ब्रह्मज्ञानी। ब्रह्मज्ञानी को तो चाहिये कि जीवौं को उनके मन और इन्द्रियौं के बंधन से छुड़ाकर उन के निज स्वरूप को लखाना और उसमें पहुँचाना ताकि आवागवन से रहित हो जावैं और कष्ट और क्लेश की निवृत्ती हो जावे सो यह बेचारे क्या करें उन्हौं ने अपने जीव का कल्यान तो किया ही नहीं दूसरे का क्या कल्यान करेंगे, न

मालूम क्या दुख पड़े या क्या आफ़त और घर की लड़ाई या झगड़े ने घेरा या कि आलस और सुस्ती ने दबा लिया कि घर बार छोड़ दिया और मुफ़्त में खाना और कपड़ा हासिल करने और अपनी मान और बड़ाई और पुजवाने की आशा लेकर भेष ले लिया और जब यह बात उनको थोड़ी बहुत प्राप्त हो गई तब अपने तईं बड़ा आदमी और उत्तम पुरुष या कि खुद ब्रह्म स्वरूप मान लिया और लोगों का धन खैंचना और कोठियाँ चलाना या रुपया जमा करके ब्याज लेना और ब्योपार करना शुरू किया ताकि और ज़ियादा नाम-वरी पैदा करैं और दस बीस सौ पचास साधू घेर कर उन्हें खाना खिलाकर उन से सेवा करावैं और अपनी सवारी में उनको अर्दली बनाकर निकालैं और

मेलों में हाथी घोड़े पालकी और नालकी जमा करके और इधर उधर से निशान नक़्क़ारे माँगकर शाही निकालें। अब ग़ौर करने का मुक़ाम है कि क्या ऐसे लोग ब्रह्मज्ञानी हो सकते हैं कि जिनके मन में यह हिर्स और हवस भरी है और जब उनकी यह ख़्वाहिशें पूरी होती हैं तब महा मगन होते हैं और औरों पर तान और अहंकार करते हैं और अपने तईं महात्मा पंडित और विद्यावान और महंत कहलाते हैं और गृहस्थियों से मदद लेकर एक दूसरे ग़ोल पर अपनी रौनक़ और जलूस दिखाकर मान बड़ाई चाहते हैं। यह तो अहंकार और मान में भूल गये और मन और माया के चक्कर में ऐसे फँसे कि अब निकल नहीं सकते और जो कोई उनको यह कसरें उनके ज्ञान की जतावे तो उससे नाराज़

हो कर लड़ने को तैयार होते हैं और उसको अभक्त और नास्तिक और सख़्त और सुस्त कहते हैं ॥

६०—अब ग़ौर करना चाहिये कि ऐसे ज्ञानियों में और तीर्थ और मूर्ति पूजा करनेवालों में क्या फ़र्क़ किया जावे बल्कि यह बेहतर हैं कि अनजान हैं और समझाये से समझ सकते हैं और वे जो ज्ञानी हैं जान बूझकर माया की तरफ़ मुतवज्जह होते हैं और समझाने वाले को नादान और ईर्षावान कहकर उसका बचन नहीं मानते सबब इसका यह है कि पूरा गुरू दोनों में से एक को भी नहीं मिला जो सतगुरू मिलते तो इनसे भक्ती मारग की रीत से सुरत शब्द जोग का अभ्यास कराते तब कैफ़ियत आप खुल जाती याने पहिले सफ़ाई मन की और प्रेम प्राप्त होता और फिर स्वरूप

का दर्शन इनको अंतर में मिलता और आनन्द उसका आता तब इस मृत्यु लोक के भोगों की बासना और आसा न उठाते और ऐसे रगड़ों और झगड़ों में जिसमें कि अब यह लोग फँसे मालूम होते हैं न पड़ते॥

६१—यही हाल गृहस्थियों का जिन को ऐसे बाचक ज्ञानियों का संग हुआ दिखलाई देता है। ज़बान से तो अपने तईं ब्रह्म बताते हैं और बरताव और रहनी जो उनकी देखो तो संसारियों से कुछ कम नहीं मालूम होती है और अपनी समझ बूझ का अहंकार दिल में ज़ियादा मालूम होता है। यह अहंकार सब पापों का मूल है जिस को अहंकार आया वही नीचे गिरा; फिर जैसे यह और जैसे इनके उस्ताद सिखानेवाले भेष और पंडित दोनों काल और कर्म

और माया के चक्कर में पड़े हैं और आइन्दा अपनी २ करनी का फल भोगेंगे, इस रीत से उनका उद्धार या मुक्ती नहीं हो सकती है ॥

६२—आज कल विद्या का बिस्तार बहुत है और बसबब हासिल होने इल्म और अक़्ल के बाहरमुखी पूजा हर एक को ओछी और फ़ुज़ूल नज़र आती है और इस में कुछ शक भी नहीं कि वे सब नक़ल हैं और उनसे कुछ भी फ़ायदा हासिल नहीं होता मगर इन को उस उपासना और अभ्यास की जिस में तन और मन पर दबाव और ज़ोर पड़ता है तलाश बहुत कम है और न उसकी मिहनत और दिक़्क़त किसी को गवारा होती है इस वास्ते कुल मतों के बिद्या-वान ज्ञान मत को पसन्द करके उस पर एतक़ाद[1] लाते हैं और बाचकज्ञानी या

(१) निश्चय।

सूफ़ी या ब्रह्मज्ञानी बनते चले जाते हैं पर अपनी हालत को ज़रा भी नहीं परखते और न दूसरों से परखाते हैं और बिद्या बुद्धि की दलीलों से लोगों को क़ायल माक़ूल करने को तैयार रहते हैं। ग़ौर का मुक़ाम है कि जब तक काम और क्रोध और लोभ और मोह और अहंकार मौजूद हैं तब तक पूरण ब्रह्म पद कैसे प्राप्त हो सकता है अगर दो चार ग्रन्थ पढ़कर समझ लेने का नाम ब्रह्मज्ञान है तो ऐसे ब्रह्मज्ञानी बनने में क्या मिहनत पड़ती है। हर एक शख़्स जिसको किसी क़दर विद्या और बुद्धि हासिल है वही ज्ञान के ग्रन्थ पढ़ सकता है पर सफ़ाई अन्तर की मन और इन्द्री को रोक कर और बात है यह बिना जोगाभ्यास के हासिल होना नामुमकिन है॥

६३—जो कोई इन ज्ञानियों से कहे कि ज़रा अभ्यास में बैठो और अपने स्वरूप में लगो तो मन चंचल उनको ज़रा भी बैठने नहीं देता है। जो सुरत शब्द जोग का अभ्यास संतों की रीति से करते तो अपनी परख होती और मन चंचल की ख़बर पड़ती सो सुरत शब्द जोग की ख़बर नहीं और न जोगाभ्यास की चाह है बल्कि उसकी ज़रूरत भी नहीं समझते हैं और इनमें से बाज़ों ने अभ्यास क्या मुक़र्रर किया है कि जो कुछ कि पोथियों में पढ़ा है उसका बिचारना और अपने तईं सब से न्यारा ख़याल करना कि मैं मन नहीं, तन नहीं, इन्द्री नहीं, पदार्थ नहीं, मैं माया से अलहिदा हूँ, अजन्मा हूँ और अलिप्त हूँ और ऐसा हूँ और वैसा हूँ और इसी ख़याल करने को अभ्यास माना है और

इसी गुनावन में जो ज़रा निश्चलता मन को हुई उसी को आत्म आनन्द समझा है। ऐसा आनन्द तो शेख़ चिल्ली को भी हासिल हुआ था जब उसने यह ख़याल किया कि मैं फ़लाने देश का राजा हूँ और ऐसा २ मेरा मकान और ऐसा जलूस है जब आँख खोली तो कुछ भी नहीं देखा॥

६४—ग़ौर करके देखा जाता है तो ऐसा ही हाल इन ज्ञानियों का मालूम होता है कि अपने को ब्रह्म स्वरूप और सत्-चित्-आनन्द स्वरूप कहते हैं और जब किसी ने कड़ुवा या तान का बचन कहा तो क्रोध करने को तैयार हैं और जब कोई अच्छा पदार्थ देखा या सुना तो उसके लेने और देखने को तैयार हैं और जो किसी ने स्तुति करी तो उस से मगन और राज़ी हैं और जो किसी ने

निन्दा करी तो उससे नाराज़ होते हैं और लड़ने और झगड़ा करने को तैयार हैं और मन की चंचलता करके एक जगह एक देश में कभी नहीं ठहरा जाता। जो आत्मानंद आया होता तो क्या यह दशा होती कि देश बिदेश मारे २ फिरते और सैर और तमाशा देखने के लिये हर एक से ख़र्च माँगते फिरते और तीर्थों और मंदिरों में कर्मियों के संग टक्करें मारते। एक शख़्स जिसके पास कुछ दाम नहीं है और जब उसको दो चार हज़ार रुपये मिल गये तो उसी रुपये से अपना कारोबार चलाकर एक जगह आनन्द से चुप होकर बैठ रहता है और जो किसी को कोई नौकरी मिल गई तो फिर कहीं तलाश को नहीं जाता है और उसी के आनन्द में मगन रहता है और अटक और भटक छोड़ देता है—यह

कैसे ब्रह्म स्वरूप ज्ञानी कि अपने को ब्रह्म और आत्मा बतलाते हैं और फिर उन को इस क़दर भी उस ब्रह्म और आत्मा का आनंद न मिला कि दो चार बरस भी एक जगह बैठकर उसका रस लेते और मेला और तमाशा और बाग़ और मकानात और देशांतर की सैर के लिये मारे २ न फिरते। ऐसी हालत से उनकी साफ़ ज़ाहिर है कि उन का ज्ञान विद्या ज्ञान याने बातौं का ज्ञान है असली ज्ञान नहीं है और आत्म आनन्द या ब्रह्म आनंद जिसकी वे ऐसी बड़ाई और सिफ़त करते हैं उनको ज़रा भी प्राप्त न हुआ॥

६५—असली ज्ञान उसका नाम है कि ब्रह्म का दर्शन साक्षात हो जावे उसका रस ऐसा है कि गृहस्थ आश्रम क्या सात विलायत के राज पर ठोकर मारता है पर वह रस मिलना चाहिये। संतौं के

मत में ब्रह्म नाम ईश्वर के लक्ष्य स्वरूप का है और यह लक्ष्य स्वरूप ही माया सबल है पर वेदान्ती ब्रह्म के लक्ष्य स्वरूप को शुद्ध और ईश्वर स्वरूप को वाच्य और माया सबल कहते हैं मगर संत जो इन दोनों स्वरूप के परे पहुँचे फ़र्माते हैं कि ब्रह्म के दोनों स्वरूप याने वाच्य और लक्ष्य माया सबल हैं याने एक जगह माया प्रगट है और दूसरी जगह याने लक्ष्य में बहुत बारीक और गुप्त है॥

६६—अब मालूम होवे कि कुल औतार दर्जे आला[1] के और योगीश्वर ज्ञानी और जितने कि देवता और पैग़म्बर और औतार दर्जे अदना[2] के हैं ईश्वर के लक्ष्य स्वरूप याने ब्रह्म से ख़्वाह उसके वाच्य स्वरूप से प्रगट हुए इस सबब से जो कोई कि उसके वाच्य स्वरूप के उपासक हैं या उसके लक्ष्य स्वरूप के ज्ञानी हैं वे सब माया

(१) बड़े। (२) छोटा।

और काल की हद्द से बाहर नहीं हुए और इसी वजह से जन्म मरन से नहीं बच सकते ॥

६७–संत सतगुरु का मारग सब से ऊँचा है और वह उपासना सच्चे मालिक याने सत्यपुरुष राधास्वामी की जो ब्रह्म और पारब्रह्म के परे हैं बतलाते हैं ताकि जीव माया की हद्द से परे हो जावे। सच्चे साध की गति दसवें द्वार याने सुन्न पद तक है और वही योगीश्वर ज्ञानी है और जो कोई कि इस मुक़ाम के नीचे रहे उनका दर्जा पूरे साध से कम है इस वास्ते हर एक शख़्स को जो कोई अपना सच्चा उद्धार चाहे मुनासिब है कि सन्तों का इष्ट याने सत्यपुरुष राधास्वामी का इष्ट धारन करे। यह नाम राधास्वामी कुल मालिक ने आप प्रगट किया है जिस किसी को इस नाम का भेद मिल जावे और

वह राधास्वामी की सरन लेकर इस नाम का संतों की जुक्ती याने तरीक़ के मुवाफ़िक़ जप करे या अन्तरी सुमिरन करे या अपने अन्तर में नाम की धुन सुने तो ज़रूर उसका उद्धार होगा और यह बात चंद रोज़ के अभ्यास में उसको आप अपने अन्तर में साबित हो जावेगी ॥

६८—यह ज़िक्र ऊपर हो चुका है कि कुल औतार और योगीश्वर ज्ञानी और पैग़म्बर और योगी ज्ञानी वग़ैरह मुक़ाम दसवें द्वार या त्रिकुटी या सहसदल कँवल से प्रगट हुए और चारों वेद नाद याने प्रणव से त्रिकुटी के मुक़ाम पर प्रगट हुए और देवता जैसे ब्रह्मा विष्णु महादेव सहसदलकँवल के नीचे से प्रगट हुए इस वास्ते इन सब का दर्जा संतों के और सत्यपुरुष के दर्जे से नीचा है याने संतों की बड़ाई इन सब से ज़ियादा है यह सब

संतों के आधीन हैं और संत सिर्फ़ सत्य-पुरुष राधास्वामी के आधीन हैं इसी सबब से संत और फ़क़ीरों का बचन और बानी वेद और शास्त्र और कुरान और पुरान पर फ़ाइक़[1] है याने इनसे ऊँचा है। वेद और कुरान और पुरान बतौर क़ानून वास्ते बन्दोबस्त दुनिया के हैं इन में अव्वल मतलब प्रवृत्ती याने दुनिया के बन्दोबस्त और क़याम याने ठहराव का है और थोड़ासा ज़िक्र निवृत्ती याने नजात का है और संतों के बचन में असली मतलब निवृत्ती याने मोक्ष का ज़िक्र है इस वास्ते उनकी बानी और बचन सब आसमानी किताबों पर फ़ाइक़ है और यही बड़ाई संतों की है क्योंकि वेद और कुल किताबें आसमानी उस स्थान से प्रगट हुई हैं जहाँ से तीन गुन और पाँच तत्त्व पैदा हुए और माया याने कुदरत

(१) बढ़ कर।

ने ज़हूरा किया और संतों का बचन उस स्थान से प्रगट हुआ जहाँ माया का नाम व निशान भी नहीं है इस वास्ते वह सिर्फ़ निवृत्ती का ज़िक्र करते हैं और यह निवृत्ती और प्रवृत्ती दोनों का ज़िक्र करते हैं बल्कि प्रवृत्ती का ज़िक्र कसरत से किया है याने वेद में अस्सी हज़ार कर्मकांड के श्लोक हैं यह प्रवृत्ती है और सोलह हज़ार उपासना कांड और सिर्फ़ चार हज़ार निवृत्ती याने ज्ञान कांड के श्लोक हैं यही हाल थोड़ा बहुत क़ुरान और दूसरी आसमानी किताबों का है कि तवारीख़ी हालात बहुत बरनन किये हैं और तरीक़ा अभ्यास और शिनाख़्त[1] मालिक कुल का बहुत कम बयान किया है। ख़ुद श्रीकृष्ण महाराज ने अर्जुन से गीता में कहा है कि वेद की हद्द से जो

(१) पहिचान।

कि तीन गुन से मिला हुआ है न्यारा हो याने उसके ऊपर स्थान हासिल कर श्लोक यह है:—

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।

और ऐसा भी कहा है कि जब तक शख़्स वर्णाश्रम के कर्म और धर्म याने उपासना में फँसा है तब तक वह वेद का दास है याने उसको वेद के कहने पर चलना चाहिये और जब वह माया और तीन गुन की हद्द से निकल गया तब वेद के सिर पर उसके चरण हैं याने वह वेद के कर्ता का कर्ता है और इसका हुक्म वेद के हुक्म के ऊपर है। श्लोक भी लिखा जाता है:—

वर्णाश्रमाभिमानेन श्रुतिदासो भवेन्नरः।
वर्णाश्रमविहीनश्च श्रुति पादोथ मूर्द्धनि॥

इस तरह मुसलमान फ़क़ीर कामिल भी शरअ़ के पाबंद नहीं बल्कि शरअ़ के हुक्म पर उनका हुक्म है॥

९९—यह क़ौल उन संतों के याने सच्चे और पूरे आशिक़ों के हैं जो कि सत्यलोक में पहुँचकर सच्चे मालिक और खुदा से मिले और वहाँ से देखते हैं कि बेशुमार त्रिलोकियाँ और बेशुमार ब्रह्मांड और हर एक ब्रह्मांड में अलहदा २ ब्रह्म व ईश्वर और माया और शक्ती याने दुनियादारों का खुदा और उसकी कुदरत और बेशुमार औतार और बेशुमार ब्रह्मा और बिष्णु और महादेव और देवता और पैग़म्बर और औलिया और अम्बिया और कुतुब और फ़रिश्ते और योगीश्वर और ज्ञानी और ऋषीश्वर और मुनीश्वर और सिद्ध और जोगी और इन्द्र और गन्धर्व हैं ऐसे जो सन्त हैं वह कब इनकी तरफ़ दृष्टि लावेंगे और कब उनके हुक्म के पाबंद होंगे। हर एक त्रिलोकी का एक २ धनी याने मालिक

है जिसको ब्रह्म और ईश्वर याने माया सबल कहते हैं स्थान इसका त्रिकुटी है और सहसदलकँवल है। ऐसे २ बेशुमार ब्रह्म और ईश्वर उस परम पद याने सत्यपुरुष राधास्वामी के पैदा किये हुए हैं सिर्फ़ सन्त इस पद में पहुँचे हैं और दूसरे की ताक़त नहीं है लेकिन जो कोई उनके बचन पर निश्चय लावे और उन से प्रेम प्रीत करे और उन का सतसंग करे उसको भी माया के जाल से अपनी कृपा से निकालकर सत्यपुरुष राधास्वामी के चरनों में पहुँचाते हैं॥

॥ इति ॥

राधास्वामी दयाल की दया

राधास्वामी सहाय

बचन हज़ूरी जो कि महाराज परम पुरुष पूरन धनी राधास्वामी साहिब ने ज़बान मुबारक से वक्त सतसंग के फ़र्माये और जिन में से थोड़े से वास्ते हिदायत सतसंगियों के लिखे गये ॥

१–ग्रन्थ साहिब में हर जगह और हर शब्द में यह बचन लिखा है कि सतगुरु खोजो पर अफ़सोस है कि कोई सतगुरु को नहीं खोजता तीर्थों और ग्रन्थों में पच रहे हैं ॥

२—पहिले मुख्य करके सतगुरु से प्रीत करनी चाहिये जिसका ऐसा अंग है उस को सब एक दिन प्राप्त है और जो नाम और सत्यलोक के खोज में लगा है और सतगुरु से प्रीत नहीं है वह ख़ाली रहेगा। मुख्य प्रीत सतगुरु की है वह सब से जुदा कर देगी ॥

३—अपनी हालत को अपने अंतर में देखते चलना चाहिये कि काम क्रोध आदिक यह सब हमारे बस हैं कि नहीं अगर नहीं हैं तो अपने अभ्यास में लगे रहना और किसी से बाद बिबाद न करना। इस बचन को सदा याद रखना चाहिये ॥

४—सतगुरु फ़रमाते हैं कि मेरा और सेवकों का संग परमार्थ का है और जो कोई मन के बिकारों में बरतेंगे मैं उनका संगी नहीं हो सक्ता ॥

५—कर्म, उपासना, ज्ञान, बिज्ञान यह चार हैं सो बग़ैर सतगुरू के एक भी हासिल नहीं हो सक्ता। अगर गुरू पूरे मिलें तो वह जैसा जिस का अधिकार देखेंगे उस को उसी में लगा देंगे और जो कोई पाखंडी गुरू मिला तो जैसी चेले की रुची देखी वैसा ही उपदेश कर दिया इस में फ़ायदा नहीं होता है बल्कि घाटा कि फिर वह और कहीं के काम का नहीं रहता॥

६—ब्रह्मा को जब कबीर साहिब ने समझाया और उसको शौक़ हुआ कि सत्यपुरुष का खोज करूँ पर काल ने बहका दिया फिर जीव की क्या ताक़त कि बिना मेहर सतगुरू के सत्यपुरुष का खोज कर सके॥

७—फ़र्माया कि परचा लेनेवाला कोई भक्त होवे तो परचा मिले। इस क़दर भक्ती किसी की नहीं है जो परचा देवें।

यह जो तुम कर रहे हो यह नक़ल है सो चिन्ता की बात नहीँ है अब के ऐसी ही मौज है ऐसे ही सब को तारेंगे ॥

८—सरन और करनी दोनोँ के वास्ते प्रेम ज़रूर है बिना प्रेम के सरन और करनी दोनोँ नहीँ हो सक्ते ॥

९—जैसे दूध मेँ घी और काठ मेँ आग है पर बिना प्रगट हुए दूध घी का काम और काठ अग्नी का काम नहीँ दे सक्ता है इसी तरह ब्रह्म घट मेँ है फिर जो ब्रह्म कहते फिरे और प्रगट हुआ नहीँ तो ब्रह्म अपने को कहना झूठा है ॥

१०—मुख्य गुरुभक्ती है जब तक यह नहीँ होगी कुछ नहीँ होगा जैसे हो सके गुरुभक्ती पूरी और सच्ची करना ज़रूर है॥

११—मालिक तुम्हारे मेँ ऐसे है जैसे फूल मेँ खुशबू, फूल दीखता है पर खुशबू नहीँ दीखती । जिन के नासिका इन्द्री

है वह फूल में खुशबू को पहिचान सक्ते हैं। ऐसे ही जिन को गुरु ज्ञान है वह मालिक को अन्तर में जानते हैं॥

१२–तुम लोग जो भजन करते हो सो तुम्हारा भजन ऐसा है जैसे कोल्हू का बैल कि दिन भर चला और रहा घर में पर अहंकार हो गया कि मैं बारह कोस चला, ऐसे ही तुम्हारे में यह मनरूपी बैल है कि भजन में बैठता है पर चढ़ता नहीं इस से अहंकार बढ़ता है कि मैंने दो घंटे भजन किया पर रस नहीं आता है जो रस आवे तो अहंकार क्यों होवे सो जब तक त्रिकुटी के परे नहीं जाओगे निर्मल रस नहीं आवेगा॥

१३–कुल जीव अधिकारी भक्ती के हैं सो पूरा अधिकार तो भक्ती का भी नहीं है। पर भक्ती में बिगाड़ नहीं है और मालिक को भक्ती प्यारी है और कुछ प्यारा नहीं

है और भक्ती सतगुरु की मंजूर है और किसी की भक्ती से वह राज़ी नहीं है ॥

१४—ऊँटवाले के हाथ में एक ऊँट की नकेल होती है, एक के बाद एक हज़ारों चले आते हैं। इसी तरह गुरुमुख तो एक ही होता है उसके प्रताप से बहुत से जीव पार हो जाते हैं ॥

१५—सतसंग पारस है, इस में जो सच्चा हो कर लगा वह कंचन हो गया जैसे पारस के परसे लोहा कंचन होता है, और जो अन्तर रहा याने कपट रहा तो वह लोहे का लोहा रहा और सतसंग तो पारस ही है ॥

१६—जो लोग सतसंगी वक़्त सेवा के आपस में क्रोध में भर जाते हैं यह उन को मुनासिब नहीं है। यह आदत संसारी जीवों की है कि जब उनके किसी काम में बिघन पड़ा तो वह क्रोध में भर आये

जो ऐसी ही आदत सतसंगी की भी हुई तो वह और संसारी एक हुए कुछ फ़र्क़ नहीं रहा, सतसंगी को क्षमा होनी मुनासिब है। यह क्रोध काल का चक्कर है उसको मत धसने दो। जिस वक़्त कोई हठ ज़बर करे उस वक़्त क्षमा करनी चाहिये ॥

१७—सुनना और समझना सहज है क्योंकि बाहर से सुन लिया और समझ भी लिया और अन्तर में नहीं धसा तो वह सुनना और समझना बृथा है और अन्तर में जो धसेगा तो उसका बरताव भी उसके अनुसार होगा। जो अन्तर में होगी वही बाहर निकलेगी यह नेम है सो जो सतसंगी हैं उनको हर वक़्त बिचार रखना ज़रूर है और सतसंगी को हर वक़्त बिचार रहता ही है क्योंकि वह हर वक़्त अपने स्वामी को सिर पर रखता है और बिना सतगुरु स्वामी को

सिर पर रक्खे हर वक़्त बिचार का ठहरना बनता ही नहीं है याने बिना हिमायती के यह मन बैरी बिचार कब आने देता है। इस से तुमको मुनासिब है कि हर वक़्त सतगुर स्वामी और शब्द को अपने सिर पर रखते रहो इस को कभी मत बिसारो ॥

१८—जैसे सब की चाह संसारी पदार्थों में जन्म जन्म से चली आती है ऐसे ही परमार्थ की भी होवे तब कुछ काम इस जीव का बने ॥

१९—यह संसार जो कि उजाड़ है इस को बस्ती समझ रक्खा है और उसके पदार्थ जो कि नाशमान हैं उनको सत्य जानते हैं और जो इस में सत्य है उस की ख़बर भी नहीं है तो क्योंकर इस जीव का गुज़ारा होवे और कैसे सतसंग में लगे॥

२०—जीव को सन्तों के संग का अधिकार ही नहीं है। कुछ काल सतसंग करे तो अधिकारी यहाँ के बैठने का होवे और बहुतेरा समझाओ पर अपनी बुद्धि की चतुराई पेश किये बिना मानता ही नहीं है। और यहाँ बुद्धी का काम नहीं है यह मारग तो प्रेम का है सो प्रेम बिना सतसंग कैसे आवे और सतसंग में काल लगने नहीं देता है। फिर जीव भी लाचार है इस का बस नहीं है॥

२१—सन्तों से ऐसी प्रीत करनी चाहिये जैसे जल मछली की प्रीत है ऐसी प्रीत जिसने सन्तों से करी तो वह उनका प्यारा हुआ और वही जगत से न्यारा हुआ॥

२२—मन को और गुरू को सन्मुख खड़ा करे उस वक्त जो गुरू का हुक्म माना तो मन को मारा और जो मन के कहने में चला तो गुरू से बेमुख हुआ

सो जिसको दर्द है वह तो गुरू को ही मुख्य रक्खेगा और जिस को ख़ौफ़ नहीं है वह मन की लहरों में बहेगा ॥

२३—सन्तों की बानी का पाठ करने और याद करने से कुछ नहीं होगा जब तक कमाई न होगी इस वास्ते जो बचन सुनो उसकी कमाई करो नहीं तो सुनना और समझना बेफ़ायदा है ॥

२४—जैसे आज कल के जीवों की प्रीत बर्त और तीर्थ और मूरत में है उस का चौथा हिस्सा भी सतगुरु के चरनों में नहीं इस सबब से इनके अन्तर में कुछ नहीं धसता है, सुनें तो ऊपर से और दर्शन करें तो ऊपर से नाम लें तो ऊपर से। जो सतगुरू पूरे मिलें तो सब द्वारों से अन्दर में धसावें बिना सतगुरू के किसी की ताक़त नहीं जो अन्तर में धसावे॥

२५–जब तक अपने वक़्त के पूरे गुरू की टेक न बाँधोगे कभी चौरासी से नहीं बचोगे। जो पिछले संतौं के घर के हो और सन्तौं की टेक रखते हो और अपने वक़्त के पूरे सतगुरु पर भाव नहीं है और उनका बचन नहीं मानते हो तो भी चौरासी से नहीं बचोगे क्यौंकि पिछले जो सन्त हो गये हैं उनका भी यही हुक्म है कि वक़्त के पूरे सतगुरु की सरन लो तो कारज होगा॥

२६–इस मन मस्त को वही बस करेगा जिसको सच्ची चाह मालिक के मिलने की है जैसे मस्त हाथी जंगल में फिरता है और जिधर चाहे उधर चला जाता है कोई नहीं रोकता है और जब हाथी-वान का अंकुस उसके ऊपर लगा तब वही मस्त हाथी बादशाह की सवारी में आया और सुख से रहने लगा इसी तरह

जो गुरुमुख हैं वही महल में दख़ल पावेंगे और जो निगुरे हैं वह चौरासी जावेंगे इस से जहाँ तक हो सके गुरु-मुखता करने में मेहनत करनी चाहिये॥

२७–जो कुछ हम कहते हैं और सुनाते हैं बमूजिब जीवों के अधिकार के है इस वक़्त कोई पूरा अधिकारी नज़र नहीं पड़ता है जो बड़े परमार्थी कहलाते हैं वह सैकड़ों चेले करते हैं और चाहे गृहस्थी होय चाहे भेष बिचारमाला पढ़ाकर ज्ञानी बना देते हैं सो ऐसे गुरू और चेले दोनों भर्म में पड़े हैं उनको सिवाय अहंकार के और कुछ हासिल न होगा और जो गुरू नानक के घर में हैं उनका यह हाल है कि ग्रन्थसाहिब को पोट बाँध कर रख लिया है और आरती उतारते हैं और डंडवतें करते हैं और

बहुत रोज़ तक ऐसा किया पर ग्रन्थ में से यह आवाज़ नहीं आई कि नाम चित्त आवै और सुखी रहो और यह नहीं ख़याल करते हैं कि ग्रन्थ साहिब में सतगुरु संत की महिमा है उनका भी खोज करना चाहिये या नहीं और जो बचन गुरू ने इस वक़्त के वास्ते फ़र्माया है उसको नहीं मानते ज़रा पहिले बिचारो कि जब गुरू नानक प्रगट हुए थे तब ग्रन्थ कहाँ था और उन्हों ने अपने ही बचन से जीवों को समझाया होगा इस से यह ज़ाहिर है कि ग्रन्थ की ताक़त नहीं है कि सन्त बना देवे और सन्त ग्रन्थ के आसरे नहीं हैं और संतों को ताक़त है कि सन्त बना देवें और जब चाहें तब ग्रन्थ रच लेवें और बहुत से ऐसे हैं कि जिन्हों ने सौ सौ बार पाठ किया पर यह ख़याल में न आया कि ग्रन्थ में क्या बचन लिखा

है ऐसे पाठ करने से कुछ काम न होगा संत सतगुरु का खोजना लाज़िम है कि जो सब भर्म को मिटावैं। सिवाय इस के चौरासी से बचने का कोई उपाय नहीँ है ॥

२८—संतौँ का सतसंग ऐसा कल्पतरु है कि सब बासना दूर कर देता है और कहते हैँ कि कल्प तरु सब बासना पूरी कर देता है पर आज तक किसी को मिला नहीँ। लेकिन सतसंग तो निज कल्पतरु है इससे बारम्बार सतसंग करना चाहिये बहुत न बन सके तो थोड़ा करे पर सचौटी के साथ करे कपट से न करे कि उस में कुछ फ़ायदा नहीँ है ॥

२९—जैसे हीरा मोती को बीँधता है पत्थर को नहीँ बीँधता है इसी तरह संतौँ का बचन अधिकारी को असर करता है अनअधिकारी को फ़ायदा नहीँ करता

पर जो अनअधिकारी भी बराबर सतसंग करता रहेगा तो एक रोज़ लायक़ सतसंग के हो जावेगा। पर दिक़्क़त यह है कि उस से सतसंग में ठहरा नहीं जावेगा ॥

३०—प्रथम धुंधूकार था उस में पुरुष सुन्न समाध में थे जब तक कुछ रचना नहीं हुई थी। फिर जब मौज हुई तब शब्द प्रगट हुआ और उससे सब रचना हुई, पहिले सत्तलोक और फिर सत्तपुरुष की कला से तीन लोक और सब बिस्तार हुआ ॥

३१—वह जो पारब्रह्म परमात्मा है सो सब जीवों के पास मौजूद है पर संसार रूपी भौसागर से किसी को निकाल नहीं सक्ता है। बजाय निकालने के और रोज़ ब-रोज़ फँसाता जाता है और जब वही पार-ब्रह्म परमात्मा सतगुरु रूप रखकर उप-देश करता है तो वह संसार के बन्धनों

से जीव को छुड़ा सक्ता है। पर लोग ऐसे अन्धे हैं कि इस स्वरूप को जो उद्धार करने वाला है नहीं पकड़ते और ग़ायब का ध्यान करते हैं सो वह ध्यान उनका क़बूल नहीं होता, क्योंकि मालिक ने यह क़ायदा मुक़र्रर कर दिया है कि जो सतगुरु द्वारे मुझ से मिलेगा उससे मैं मिलूँगा निगुरे को मेरे दरबार में दख़ल नहीं है, अब जो कोई यह कहे कि जीव संतों का बचन क्यों नहीं मानते हैं सो सबब उसका यह है कि ख़ौफ़ और शौक़ नहीं है जिसको मालिक का ख़ौफ़ होगा उसको शौक़ मिलने का भी होगा पहिले ख़ौफ़ होना चाहिये ॥

३२—आज कल के गुरू चेला तो कर लेते हैं और पत्थर पानी में जीव को लगा देते हैं। चाहिये तो यह था कि अपने से प्रीत कराते सो वह क्या करें

उन्होंने आप गुरू से प्रीत करी होती तो वह भी अपनी प्रीत कराते ऐसे जो गुरू हैं उनका नाम गुरू नहीं हो सक्ता है॥

३३—जिसको दर्द परमार्थ का और डर चौरासी का है उसको मुनासिब यह है कि पहिले पूरे गुरू को पकड़े क्योंकि जब तक गुरू से प्रीत न होगी अन्तःकरण शुद्ध नहीं होगा और जब तक अन्तः करण शुद्ध नहीं होगा तब तक नाम फ़ायदा नहीं करेगा, जैसे किसान जब बीज डालता है तो पहिले खेत को कमा लेता है जो बे कमाये हुए बीज डाल दे तो कुछ नहीं पैदा होता इसी तरह हृदयरूपी ज़मीन की कमाई के वास्ते गुरू का प्रेम है जब तक गुरू का प्रेम नहीं होगा नाम फ़ायदा नहीं करेगा और आज कल के लोगों का यह दस्तूर है कि नाम का सुमिरन घर बैठे किया करते हैं और गुरू से

कुछ मतलब नहीं सो ऐसे लोग दोनों से ख़ाली रहेंगे न गुरू ही मिला और न नाम ही मिले क्योंकि नाम गुरू के इख़्तियार में है सो गुरू से प्रीत नहीं करी फिर नाम कैसे मिले ॥

३४—ब्रह्मा से आदि लेकर जितने देवता हैं और राम और कृष्ण से आदि लेकर जितने अवतार हुए हैं इन सब का दरजा सन्तों से नीचा है और सन्तों का दरजा सब से ऊँचा है यह सब कामदार और वज़ीर हैं और सन्त बादशाह हैं ॥

३५—सतसंग मुख्य है इसमें पड़े रहने से बहुत से फ़ायदे होते हैं यहाँ तक कि जैसे पत्थर जो पानी में पड़ा रहता है तो सीतल रहता है अगरचे अन्तर में उसके सीतलता असर नहीं करती है पर फिर भी जल के बाहर के पत्थरों से बिहतर है ऐसे जो जीव बाहर से सतसंग

में आ बैठते हैं और अन्तर में उनके नहीं धसता है तो कुछ हर्ज नहीं है संसारी जीवों से फिर भी बिहतर हैं। आहिस्ता आहिस्ता अन्तर में भी असर होने लगेगा ॥

३६—जब तक स्वाँसा है गुरु भक्ती करे जाना चाहिये गुरु भक्ती कुल मालिक की भक्ती तो है और उनसे कुछ न माँगे उनको इख़्तियार है जब वह अधिकारी देखेंगे जो चाहेंगे सो बख़्श देंगे ॥

३७—सतगुरु को दीनता पसन्द है जो दीनता सच्ची है तो न मन की चंचलता का फ़िकर करे और न रास्ते के तोशे का सोच करे एक सतगुरु की सरन दृढ़ करे और उनकी ओट लेवे बेड़ा पार है ॥

३८—जिन के जड़ चेतन की गाँठ बँधी है वह काम क्रोध लोभ मोह अहंकार में बरतते हैं। कभी सील क्षमा संतोष

का बरताव हो जाता है सो भी ऊपरी अन्तर में तो वही रस लेते हैं और जिनकी जड़ चेतन की गाँठ खुली हुई है उनके कभी काम क्रोध लोभ मोह अहंकार पास भी नहीं आते हैं॥

३९—मालिक सब के साथ हर वक़्त मौजूद रहता है अच्छा और बुरा जो कोई काम करता है सब की बरदाश्त करता है जब उसकी मर्ज़ी होगी तब उस से वह काम नहीं करावेगा और किसी के कहने से कोई नहीं मानेगा नाहक़ क्यों किसी को दुखाना जिसको अपने ऊपर सरधा और प्रतीत होवे उसके समझाने में दोष नहीं है और वही मानेगा॥

४०—कर्मी और धारई और ज्ञानी कभी सन्तों के बचन को नहीं मानेंगे यह संसारी चाहवाले और बुद्धि के बिलास वाले हैं उनको सन्तों के सतसंग में आना

भी मुनासिब नहीं है और निर्मले सन्यासी ज्ञानी वेदान्ती निहंग और मूरत तीरथ बरत वाले और जो जो वेद शास्त्र पुरान क़ुरान के क़ैदी हैं और परमार्थ का दर्द नहीं रखते वे सब इसी तरह के लोगों में से हैं इनसे संतों को सिवाय तकलीफ़ के और कुछ हासिल न होगा क्योंकि इनको खोज सतगुरु का नहीं है सिर्फ़ टेकी हैं॥

४१—इस कलयुग में तीन बातों से जीव का उद्धार होगा एक सतगुरु पूरे की सरन दूसरे साध संग और तीसरे नाम का सुमिरन और सरवन और बाक़ी सब झगड़े की बातें हैं। इस वक़्त में सिवाय इन तीन बातों के और कामों में जीव का अकाज होता है॥

४२—यह जीव संसार में वास्ते तमाशा देखने के भेजा गया था पर यहाँ आन कर मालिक को भूल गया और तमाशे

में लग रहा जैसे लड़का बाप की उँगली पकड़े हुए मेला देखने को बाज़ार में निकला था सो उँगली छोड़ दी और मेले में लग गया सो न मेले का आनंद रहा और न बाप मिलता है मारा मारा फिरता है इसी तरह से जो अपने वक़्त के सतगुरू की उँगली पकड़े हुए हैं उन को दुनिया में भी आनंद है और उन का परमार्थ भी बना हुआ है। और जिनको वक़्त के सतगुरू की भक्ती नहीं है वह यहाँ भी दर बदर मारे मारे फिरते हैं और अंत को चौरासी में जावेंगे॥

४३—जो शब्द का रस चाहे तो मुनासिब है कि एक वक़्त खाना खावे और जो हर रोज़ दो या तीन बार खाना खावेगा उसको शब्द का रस हरगिज़ नहीं आवेगा॥

४४—ज़िन्दगी वही सुफल है जो सतगुरु सेवा और मालिक के भजन में लगे और धन वही सुफल है जो संत सतगुरु और साध की सेवा में ख़र्च होवे और लड़के बाले और कुटुम्बी इसके वही हैं जो परमार्थ में संग देवें ॥

४५—जो सतगुरु की प्रीत और उनका निश्चय करेगा उसको शब्द भी मिलेगा और जिसको सतगुरु की प्रतीत नहीं है वह शब्द से भी ख़ाली रहेगा ॥

४६—काम क्रोध लोभ मोह अहंकार की जड़ और आशा तृष्णा की मैल अन्तःकरण में है सो यह मैल सतगुरु की प्रीत से जावेगी और प्रेम आवेगा जब प्रेम आया तब ही काम पूरा हुआ ॥

४७—सेवक का धरम यह है कि सिवाय सतगुरु के और सब की सरन तोड़ देवे और सतगुरु को ही मुख्य करके पकड़े

और जो सेवक ऐसा नहीं करेगा तो सतगुरु अपनी दया से आप पकड़ेंगे पर उसको ज़रा तकलीफ़ होगी ॥

४८—चेतन की सेवा से चेतन को पावेगा और जड़ की सेवा से जड़ को पावेगा सो सिवाय सतगुरु के और सब जड़ हैं एक संत सतगुरु ही इस संसार में चेतन हैं इस वास्ते उनकी सेवा सब जीवों को जो अपना भला चाहते हैं और चेतन से मिला चाहते हैं करना चाहिये ॥

४९—पहिले गुरुमुखता होनी चाहिये बाद इसके नाम मिलेगा और जब तक गुरुमुखता नहीं होगी नाम कभी नहीं मिलेगा इस वास्ते सब को चाहिये कि गुरुमुख होने में मिहनत करें ॥

५०—संसारी जो अपनी तमाम उमर संसार में खो देते हैं अंत काल अकेले जाते हैं मरघट तक उनके सब संग रहते

हैं अंतकाल का कोई संगी नहीं है और जो सतसंगी हैं उनके सतगुरु सदा संग रहते हैं और यह बात ज़ाहिर है कि अकेले तकलीफ़ होती है याने बिना दो के संसार में भी और अन्त को भी तकलीफ़ रहती है यहाँ तो स्त्री और पुत्र इनके संग आराम रहता है और अन्त को गुरू सहाय होते हैं। इस देह धरे का यही फल है कि सतगुरु का संग बारम्बार करे कि अन्त को फिर तकलीफ़ न होवे जो बाहर से न बने तो उनको अपने अन्तर में सदा सँग रक्खे॥

५१—जैसे बाचक ज्ञानी बिना प्रेम के ख़ाली फिरते हैं ऐसे ही सतगुरु भक्त भी बिना प्रेम के ख़ाली रहता है जब तक प्रेम नहीं आवेगा तब तक कुछ प्राप्ती नहीं होगी पर इतना फ़र्क़ है कि बाचक ज्ञानी ने तो प्रेम की जड़ ही काट दी उसको

कभी कुछ हासिल नहीं होगा और सत-गुरु भक्त को एक रोज़ प्रेम की बख़्शिश ज़रूर होगी ॥

५२–नाम याने शब्द बड़ा पदार्थ है पर किसी को इसकी क़दर नहीं है क्योंकि नाम की यह महिमा है कि सोते पुरुष को पुकारो तो वह जाग पड़ता है और जो जागता पुरुष है उसको नाम लेकर पुकारो तो क्यों नहीं सुनेगा पर वह तुम्हारी पकाई और सचाई देखता है और जब तुम्हारी आँखों को देखने के लायक़ और हृदय को अपने बैठने के लायक़ करले तब प्रगट होवे इतने में जो घबरा जावे और छोड़ देवे तो वह भी चुप हो रहता है और जिसने यह समझ लिया कि जब तक स्वाँस आता जाता है तब तक नाम को नहीं छोड़ूँगा उसको फिर वह ज़रूर मिलता है ॥

५३–जिसको सतगुरु मिले और उन्हों ने अपनी कृपा से नाम और उसका भेद बख़्शा तो उसको चाहिये कि उसकी कमाई करे और सतगुरु की प्रीत और प्रतीत बढ़ाता जावे और जो न हो सके तो अपने मन में पछतावे और जतन करता रहे और किसी के समझाने का इरादा न करे समझानेवाला अपना फ़िकर आप कर लेगा इसको चाहिये कि यह अपना फ़िकर करे॥

५४–इस कलयुग में संतों ने बजाय पुराने तीर्थों के और ब्रतों के यह तीर्थ और ब्रत मुक़र्रर किये हैं याने सतगुरु की आज्ञा में बर्तना तो ब्रत और सतगुरु और साध का संग तीर्थ इस से जीव को फ़ायदा होगा और पुराने तीर्थ ब्रत करने से सिवाय अहंकार के और कुछ हासिल नहीं होगा॥

५५—यह मन बतौर मस्त हाथी के है जिधर चाहता है उधर चला जाता है और जीव को संग लिये फिरता है जंगल के हाथी के लिये तो हाथीवान दुरुस्त करने को ज़रूर है और इस मन रूपी हाथी को सतगुरु ज़रूर हैं जब तक सत-गुरु का अंकुस इस पर न होगा तब तक इसकी मस्ती नहीं उतरेगी इस जीव को जो परम पद की चाह है तो सतगुरु करना ज़रूर है बिना सतगुरु के कभी परम पद हासिल न होगा इस बचन को सच्चा मानो नहीं तो चौरासी जाओगे ॥

५६—संत सतगुरु का मत सरगुन और निरगुन दोनों से न्यारा है और जो रचना सत्यलोक में है वह भी सत्य और उसका रचनेवाला सत्यपुरुष भी सत्य है ॥

५७—जो संत या फ़क़ीर हैं वह ज़ाते खुदा याने स्वरूप मालिक के हैं जो उनकी

ख़िदमत करेगा और उनकी मुहब्बत और प्रतीत करेगा वह भी ज़ाते ख़ुदा हो जावेगा ॥

५८—गुरुमुख होना मुश्किल है शब्द का खुलना मुश्किल नहीं है सो सतगुरु की मौज से होगा बिना उनकी दया के कुछ नहीं हो सकता ॥

५९—दसवाँ द्वार जो इस शरीर में गुप्त है सो इस कलयुग में सन्तों ने उसके खुलने का उपाव शब्द के रास्ते से रक्खा है और सब मत वालों का दसवाँ द्वार और रीत से खुलना गुप्त हो गया ॥

६०—दोनों काम नहीं बन सकते भक्ती गुरू की करोगे तो जगत से तोड़नी पड़ेगी और जगत से रक्खोगे तो भक्ती में कसर पड़ेगी सो इस बात का नेम नहीं है जिनके अच्छे संस्कार हैं और सतगुरु की कृपा है उनके दोनों काम बख़ूबी बनते

चले जावेंगे कुछ दिक़्क़त नहीं पड़ेगी और जिन के संस्कार निकृष्ट हैं उन से एक ही काम बनेगा ॥

६१—जिसको शब्द मारग की चाह है और उस को उसके भेदी सन्त मिल जावें तो मुनासिब है कि तन मन धन उन के अरपन कर दे और उन से ज़रा दरेग़ न करे ॥

६२—नाम रसायन के बराबर कोई रसायन नहीं है जिसने यह रसायन बना ली उस के पास सब रसायन हाथ बाँधे खड़ी हैं जब ख़ाविंद क़बज़ेमें आ गया तब जोरू कहाँ जा सकती है ॥

६३—मुक्ति में बड़े भेद हैं कोई तीर्थ और व्रत करना इसी में मुक्ति समझते हैं कोई जप तप को मुक्ति रूप जानते हैं कोई त्याग में मुक्ति मानते हैं सो यह सब ग़लती में पड़े हैं। सन्त यह कहते हैं कि जब तक

सुरत अपने निज मुक़ाम को न पावेगी तब तक मुक्ति का होना सही नहीँ है॥

६४—वेद से आदि लेकर जितने शास्त्र हैँ और षट दर्शन और चाँद्रायण से आदि लेकर जितने बर्त हैँ और जितना पसारा इस लोक का है सब नाश होँगे एक संत और सेवक बचैँगे इस से लाज़िम है कि संसारी प्रीतोँ को कम करैँ और संतोँ से प्रीत बढ़ावैँ उनकी प्रीत सुख की दाता है और धन और मान और स्त्री और पुत्र की प्रीत दुख की दाता है॥

६५—पंडित और भेष से जीव का उद्धार नहीँ होगा, जब तक संत दयाल न मिलैँगे और किसी से इस जीव का उद्धार नहीँ होगा सो जहाँ तक बन सके संत दयाल का खोज करके उनकी सरन पड़े तो एक ही जन्म मैँ उद्धार है॥

६६—जो संत गृहस्थ में रहते हैं उन से बहुत से जीव पार होते हैं और जो भेष में होते हैं उनसे उद्धार किसी का नहीं होता पर जो संत दयाल हैं वह गृहस्थ ही में रहते हैं ॥

६७—मालिक ने यह फ़र्माया है कि साध और प्रेमी जन मेरी देह हैं जो मेरी सेवा करना चाहें तो मेरे साधुओं और प्रेमियों की सेवा करें और लोग बावले पानी और पत्थर पूजते हैं गुरु भक्ती और सतसंग और साध सेवा जो मुख्य है सो कोई नहीं करता है ॥

६८—इस वक़्त के जीवों के वास्ते पहिले गुरु भक्ती और सतसंग चाहिये इस के बिना काम नहीं होगा ॥

६९—सतसंग में आ बैठने से कर्म नहीं कटते हैं सतसंग का जो कर्म है उस के करने से कर्म कटते हैं ॥

७०--हर कोई नाम का सुमिरन करता है और कुछ भी अंग उसका नहीं बदलता सबब इसका यह है कि पोथियों का लिखा नाम जपता है किसी साध का बताया हुआ नाम जपे तो ख़बर नाम के रस की पड़े क्योंकि संतों ने अपने हृदय रूपी ज़मीन को कमा कर नाम रूपी दरख़्त लगाया है और उस का फल खाते हैं। जो कोई खोजी प्रेमी नाम का उन के पास जावे उस को नाम का फल देते हैं॥

७१-जिनको सतगुरु नादी मिले हैं उन्हों ने अनहद शब्द सुना है और किसी को यह मारग हासिल नहीं है। इस वक़्त में वही भाग्यवान है जिसको इस मारग की प्रतीत आ गई और इस की कमाई में लग गया॥

७२–जो सतसंग करे और बचन भी सुने तो मनन भी करना चाहिये ता कि निध्यासन यानी अभ्यास की सीढ़ी पर आ जावे और जो मनन नहीं करेगा तो कुछ फ़ायदा नहीं होगा जैसे का तैसा बना रहेगा ॥

७३–जिसको सतगुरु ताड़ें उस की सतसंगियों को सिफ़ारश करनी मुनासिब है और जिसका वे आदर करें उसकी उन को भी ख़ातिर करनी चाहिये ॥

७४–जो कोई बिना भाव के साध को खिलाता है तो उसका तो फ़ायदा है पर साध का नुक़सान है ॥

७५–ज़ाहिर में पूजा करने के वास्ते तो संतों की अकाल मूरत है और गुप्त में जिसका संत ध्यान करते हैं वह भी अकाल पुरुष है पर संसार जड़ को छोड़ कर डालियों को पूजता है सो जड़ भी

हाथ नहीं आती और डालियाँ भी सूख जाती हैं। मतलब डालियाँ पुजवाने से यह था कि एक रोज़ जड़ तक आ जावेगा पर जीवों ने डालियों को ऐसा पकड़ा कि छुड़ाये नहीं छोड़ते हैं याने पंडितों के बहकाने से अनेक तरह की पूजा कर रहे हैं और करने लगते हैं। सबब इसका यह है कि इस जीव के संग काल का वकील याने मन मौजूद है जो कोई काल का मत इसको समझाता है तो मन भी मदद करता है क्योंकि काल की हद्द से बाहर नहीं जाता है और जब दयाल का मत सन्त उपदेश करते हैं तब काल का वकील मन इस को बहका देता है और सन्तों के बचन का निश्चय नहीं आने देता है॥

७६—चाह की जड़ काटनी चाहिये क्योंकि जिस बात की यह चाह करता

है और वह पूरी नहीं होती तो बहुत तकलीफ़ पाता है। जो काम करे उसकी मौज पर करे अपना अहंकार न करे पर इस बचन की बारीकी को समझना चाहिये नहीं तो करनी से ढीला पड़ जावेगा यह बात पूरी जब हासिल होगी जब मालिक का दर्शन उसको प्रत्यक्ष होगा बिना दर्शन यह हालत नहीं आवेगी। यह गति सन्तों की है कि सब में उसको प्रेरक देखते हैं जगत का तमाशा सन्तों को खूब दीखता है दूसरे की ताक़त नहीं है॥

७७—जिन लोगों को गुरु नानक या किसी और सन्त की टेक है और उनका बचन मानते हैं उनको गुरू और संत के घर का जान कर उन्हीं से सतगुरु यह कहते हैं कि गुरु नानक या और संत को अपना पिता समझो और उनका बचन

मानो—पिता का काम पालन पोषन करने का है, जैसे कि पुत्री को पिता पालता है और सब तरह से उसकी ख़बर लेता है पर जब उस को पुत्र की चाह होती है तब उसको पति के हवाले करता है—पिता के घर में पुत्र नहीं हो सक्ता है—इसी तरह से गुरू नानक और संत कहते हैं कि सत-गुरू खोजो जो प्रानी सच्च खंड और सत्य नाम की चाहते हो यह कहीं नहीं कहा कि ग्रन्थ और पोथी की टेक बाँधो तो तुम को सच्च खंड मिलेगा इस जन्म में तो सन्तों के घर के और उनके टेकी कहलाये और जो उनका बचन न माना याने सतगुरू वक़्त का खोज न किया तो चौरासी में जाओगे इतना समझाना सन्तों के घर के जीवों को है और जो पंडितों के किंकर हुए वह सन्तों के घर के न रहे उनसे कुछ कहना नहीं चाहिये वे मानें चाहे न मानें॥

७८—जो दुनियादार हैं उनकी आशक्ती स्त्री और धन में है और उसी में उनको रस आता है इसी से वह संसारी कहलाते हैं और जिनको अपने सतगुरु के दर्शन और बचन में आशक्ती है और रस मिलता हैं उनका नाम गुरुमुख है—सतगुरु की प्रीत करने वाले कम हैं और दुनियादार बहुत हैं पर जो सतगुरु के सन्मुख आये हैं तो वह उनको एक रोज़ गुरुमुख बना कर छोड़ेंगे ॥

७९—बाज़े जीव सतगुरु से कहते हैं कि जो तुम सतगुरु पूरे हो तो हम एक तिनका तोड़ दें तुम जोड़ दो सो सतगुरु फ़र्माते हैं कि जिसको तुम ने ब्रह्म माना है उस से तिनका टूटा हुआ जुड़वाओ जो वह जोड़ देगा तो हम भी जोड़ देंगे क्योंकि सतगुरु और ब्रह्म एक हैं पर ब्रह्म की ताक़त नहीं है कि टूटा हुआ तिनका

जोड़ देवे या मुर्दे को जिला देवे और जो सतगुरु से प्रीत करेगा और सरधा लावेगा तो उसका तिनका भी जोड़ देंगे और मुर्दे को भी जिला देंगे क्योंकि जो संसारी हैं वह मुर्दे हैं और जिनको सतगुरु वक़्त से प्रीत है वही ज़िंदा हैं और उन्हीं का तिनका टूटा हुआ जुड़ा है॥

८०–मुरीद नाम मुर्दे का है कि जिस तरह गुरू कहें उसी तरह करे अपनी अक़्ल को पेश न करे सो जब तक यह हालत न आवे तब तक अपने को ज़िन्दा और संसारी जाने और मुर्दा न माने पर मिहनत करे जाय और बचन माने याने सतगुरु की सेवा और सतसंग और भजन करता रहे और उनके चरनों में प्रीत और प्रतीत बढ़ाता रहे एक दिन मुरीद हो जावेगा॥

८१–जो कोई सतसंगी से यह सवाल

करें कि तुमको संतों का निश्चय किस तरह आया और वक्त के सतगुरु को कैसे पूरा जाना तो जवाब यह है कि पिछले संजोग से निश्चय आया कुछ साधना नहीं करनी पड़ी बचन सुनते ही निश्चय आया जैसे चकोर को चंद का और पतंग को दीपक का ॥

८२—जिस माया ने जगत को बस कर रक्खा है उसको संतों ने ही बस किया है जो माया से अलग होना चाहे उस को चाहिये कि संतों का संग करे और ताड़ मार निंदा स्तुति जो कुछ होवे सब को सहे तब साध बनेगा और जिसको बरदाश्त बिल्कुल नहीं है याने जब तक खातिरदारी के बचन कहे जावें तब तक खुशी से रहे और जब गढ़त के बचन कहे जावें तबही कमर बाँध के छोड़ कर चलने को तैयार हो तो इस तरह से कभी

साध नहीं बनेगा साध जब ही बनेगा
जब हर एक बात की बरदाश्त करेगा ॥

८३—जब तक संतों के हुक्म के मुआ-
फ़िक़ कर्म नहीं करेगा मन निर्मल नहीं
होगा और जब तक सतगुरु और शब्द
की उपासना नहीं करेगा चित्त निश्चल
नहीं होगा जब यह दो दर्जे भली प्रकार
कमा लेगा तब ज्ञान का अधिकारी होगा
जब ज्ञान हुआ तब आवरण दूर हो
जायगा । आजकल के ज्ञानियों का यह
हाल है कि उनको इस बात की ख़बर
भी नहीं कि हमारा मन निर्मल और
चित्त निश्चल हुआ है या नहीं पोथियाँ
पढ़ कर ज्ञानी हो गये और जो जीव
उनके पास जाता है उसको ज्ञान का
उपदेश करते हैं यह नहीं जानते कि
इस कलियुग में कोई जीव ज्ञान का अ-
धिकारी नहीं है इस से मालूम हुआ

कि वे अंधे हैं आप चौरासी जावेंगे और जो उनके क़ाबू में आवेगा उसको भी लेजावेंगे जिसको चौरासी से बचना होवे वह संतों का बचन माने और अपनी नरदेही को सुफल करे क्योंकि मुश्किल से हाथ आई है इसको बृथा नहीं खोना चाहिये और जो नहीं माने तो इख़्तियार है॥

८४—बग़ैर संत सतगुरु वक़्त के कुछ हासिल नहीं होगा जब यह सतगुरु वक़्त की सेवा करे और उनको प्रसन्न करे तब कुछ हासिल होगा और जो नाम को यह चाहता है चाहे जिसक़दर मिहनत करे पर हासिल नहीं होगा जब सतगुरु प्रसन्न होंगे तब नाम मिलेगा॥

८५—जैसे आग पर कांच नहीं ठहरता है इसी तरह से यह नरदेही भी संसार के भोगों की आग में दिन रात पिघलती

जाती है बड़भागी वह जीव हैं जिनको सतगुरु पूरे मिल गये और उनकी संगत में अपना तन मन धन ख़र्च कर रहे हैं॥

८६—साध के संग से पाव घड़ी में कोट जन्म के पाप कट जाते हैं पर होवे साध पूरा—पहिले तो सच्चा साध मिलना मुश्किल है और जो साध भी सच्चा भाग से मिला तो संग नहीं किया जाता जब तक संग नहीं होगा प्रतीत नहीं आवेगी और जो प्रतीत नहीं आई तो फिर प्रेम कहाँ से आवेगा और जब यह दो बातें नहीं तो फिर दया कैसे आवेगी और जो साध सतगुरु की दया नहीं प्राप्त हुई तो फिर कारज भी पूरा नहीं होगा इस से मुख्य संग है जो एक जन्म इसका सतगुरु के खोज में गुज़र जावे तो कुछ नुक़सान नहीं है बल्कि बहुत फ़ायदा है क्योंकि नर देही का भागी हो गया और

तीर्थ ब्रत मूरत पूजा चेटक नाटक सिद्धी शक्ती नेम आचार कर्मकांड ब्रह्मज्ञान के झगड़ों में पड़ गया तो नर देही भी हाथ से गई और चौरासी के दुख फिर भुगतने पड़े क्योंकि जब ब्रह्मा बिष्णु महादेव और तैंतीस कोटि देवता जिनका यह पसारा फैलाया हुआ है सब जन्म मरन में पड़े हैं तो जीव जो कि असमर्थ है कैसे बच सक्ता है पर जो कहीं भाग से सतगुरु पूरे मिल जावें तो यह सब जिन का नाम ऊपर लिखा गया है जन्म मरन में पड़े रहेंगे पर वह जीव अपने निज स्थान को सतगुरु की मेहर से पा जावेगा, जो इस बचन की प्रतीत नहीं है तो सन्तों के बचन की गवाही लेलो और जो न इस बचन की प्रतीत है और न सन्तों के बचन पर निश्चय है तो चौरासी का रास्ता खुला हुआ है चले जाओ ॥

८७—ग्रन्थों और पोथियों में जो नाम लिखा है उसके पढ़ने और जप करने से कुछ हासिल नहीं होगा। नाम का रास्ता साध के संग से प्राप्त होगा—पर यह कहना उनके वास्ते है जो खोजी हैं संसारियों के वास्ते यह उपदेश नहीं है॥

८८—संसार के बंधनों की जड़ अहंकार है—जैसे माला में मुख्य सुमेर है जब सुमेर को पकड़ लिया तो कुल दाने माला के हाथ आगये और जो उस में से सूत को निकास लिया तब सब दाने अलग हो गये—इसी तरह जिनके ऊपर सतगुरु की कृपा है उन्हों ने अहंकार की जड़ काट दी है और सब संसार के भोगों की बासना को हटाकर केवल एक सतगुरु वक्त से अपना रिश्ता लगा लिया है उन्हीं की नर देही सुफल है और जिनको यह बात हासिल नहीं है तो वह मनुष्य की सूरत

हुए तो क्या, पशू हैं-और यह बचन सतसंगी के वास्ते है दुनियादार बजाय मानने के झगड़ा करने को तइयार होंगे ॥

८९-जगत के जीवों का हाल क्या कहा जावे और उन से क्या कहैं जब कि स्वामी और सेवक में कोई बिरला स्वामी निरलोभी होगा और कोई बिरला ही सेवक निरलोभी निकलेगा-यह बात क़ाबिल याद रखने के है ताकि अपनी बृत्ती की परख होती रहे ॥

९०-सतगुरू की सेवा और शब्द की कमाई से हौं मैं रूपी मैल को दूर करना चाहिये तब मालिक राज़ी होगा-खुलासा यह है कि अहंकार को खोना चाहिये और दीनता हासिल करनी चाहिये, क्योंकि वह तो दीनदयाल है, जब जीव दीन हुआ तबही वह दयाल हुआ और तबही काम पूरा हुआ, पर दीनता का आना मुशकिल है ॥

९१—जो अपने वक़्त के सतगुरु के हुक्म के बमूजिब कर्म और उपासना करेगा उसको कुछ फ़ायदा होगा और जो पंडितों के बहकाने में आकर बेद पुरान के कर्म करेगा उसका बिगाड़ होगा ॥

९२—गुरू की पूजा गोया मालिक की पूजा है--क्योंकि मालिक आप कहता है कि जो गुरुद्वारे मुझको पूजेगा उसकी पूजा क़बूल करूँगा और जो गुरू को छोड़ कर और और पूजा करते हैं उनसे मैं नहीं मिलूँगा। जो कोई यह कहे कि गुरू की पहिचान बताओ तो हमको यक़ीन आवे तब हम गुरू की पूजा करें तो उस से यह सवाल है कि तुम जो मालिक की पूजा करते हो उसकी पहिचान बताओ कि तुम ने उसकी पहिचान कैसे करी है—जो मालिक की पहिचान है वही गुरू की पहिचान है क्योंकि हरि गुरु एक हैं

उन में भेद नहीं—पर हरि की पूजा करने से हरि नहीं मिलेगा और सतगुरु की पूजा और सेवा करने से हरि मिल जावेगा इतना ग़ौर कर लेना चाहिये—और जो कोई यह कहे कि जब हरि गुरु एक हैं तो हम हरि की ही पूजा न करें गुरू की पूजा क्या ज़रूर है सो यह बात नहीं हो सकती है, पहिले भक्ती सतगुरु की करनी पड़ेगी तब वह मिलेगा यह क़ायदा उसने आप मुक़र्रर किया है कि जो गुरु द्वारे मुझ से मिलेगा उस से मैं मिलूँगा निगुरे को मेरे यहाँ दख़ल नहीं है और गुरू पूरा चाहिये ॥

८३—जो जीव को पूरा गुरू मिल जावे और उन पर परतीत आ जावे और उनकी भली प्रकार दीनता करे तो आज इस जीव को वह पद प्राप्त हो सकता है जो ब्रह्मा बिष्णु महादेव से

आदि लेकर जितने हुए किसी को नहीं मिला और न मिल सकता है ॥

८४—निन्दा और स्तुति दोनों के करने में पाप होता है क्योंकि जैसा कोई है वैसा बयान नहीं हो सकता है इस से मुनासिब यह है कि स्तुति करे तो अपने सतगुरु की और निन्दा करे तो अपनी—इस में अपना काम बनता है और किसी की निन्दा स्तुति में वक़्त खोना है—पर एक जगह के वास्ते मना नहीं है कि कोई अपना है और किसी के बहकाने में आगया है या आया चाहता है उस से कह देना ज़रूर है कि यहाँ से तुमको फ़ायदा नहीं होगा यह जगह धोखे की है, इसमें पाप नहीं है पर हर एक से कहना ज़रूर नहीं ॥

८५—जब तक सुरत अपने निज स्थान को न पावेगी सुखी नहीं होगी

इस वास्ते मुनासिब है कि सब झगड़े छोड़कर अपने घर का फ़िक्र करे क्योंकि इस नर देही में घर का रास्ता मिल सकता है अब के चूके ठीक नहीं है॥

९९-जब तक वक़्त गुरू की सेवा और नाम का भजन सुमिरन न करेगा तब तक नाम किसी तरह से प्राप्त नहीं होगा-इस वास्ते मुनासिब है कि जिस क़दर हो सके वक़्त गुरू की सेवा तन मन धन से करे तो एक रोज़ उनकी कृपा से सब की प्रीत हटकर एक सतगुरु की प्रीत आजावेगी--फिर यह सूरत हो जावेगी कि चाहे कैसी ही तकलीफ़ और आफ़त आवे उस को दुख नहीं होगा और जो सामान ख़ुशी मुयस्सर आवे तो उसमें हर्ष नहीं होगा-जब ऐसी हालत हो गई तो जीते जी मुक्ति को प्राप्त हो गया अब क्या करना बाक़ी रह गया॥

९७—जिस किसी को ख़ौफ़ मरने का और चाह मुक्ति की होगी उसी को सतसंग और सतगुरु प्यारे लगेंगे और जिस को चाह दुनिया की है और डर मरने का नहीं है उस से सतसंग में नहीं आया जावेगा और न सतगुरु से प्रीत करी जावेगी ॥

९८—नाम तो संसार जप रहा है कोई ख़ाली नहीं है पर फ़ायदा किसी को नहीं होता है इस का सबब यह है कि सतगुरु द्वारा नाम नहीं लिया है मन मत नाम जपते हैं ॥

९९—जो जीव संतों के सतसंग में आगया और भेद भी संत मारग का ले लिया पर यह ऐसा है जैसा बीजक का सुनाना जब तक अपनाया नहीं जायगा तब तक नाम का धन नहीं मिलेगा ॥

१००—जब कोई जीव सतसंग में आता है तो उसको संत परख लेते हैं कि उस को कितना क़र्ज़ा काल का देना है--जो देखा कि इसका क़र्ज़ा थोड़ा है और इस जन्म में अदा हो सकता है तो उस को संत चरनों में लगाते हैं और जो देखा कि अभी काल का खाजा है तो उस को नहीं लगाते हैं--पर सन्तों के सन्मुख आने से उसके बेशुमार कर्म कट जाते हैं और आगे को उसे अधिकारी बनाते हैं॥

१०१—अहंकार के मैल को निकालना पहिले ज़रूर है--आज कल बाज़े जीव अपनी समझ से काम तो वही करते हैं कि जिस में नाम की प्राप्ती होवे और अहंकार का मैल जावे पर स्वतंत्र याने अपने अहंकार के संग करते हैं सतगुरु के आसरे नहीं करते हैं--इससे और अहंकार ज़ियादा होता जाता है याने

मनमुखता करते हैं और सतगुरु को मुख्य नहीं रखते ॥

१०२—संतों के मत में मालिक और जीव का अंस अंसी भाव माना जाता है और वेदान्ती केवल ब्रह्म ही मानते हैं जीव को कुछ भी नहीं गिनते ॥

१०३—जिसको सतगुरु की प्रीत है और उन्हीं को चाहता है वह एक रोज़ निज घर में पहुँच जावेगा और जो सत्तनाम और सत्तलोक की चाह रखता है और सतगुरु से प्रीत नहीं है तो वह न सत-गुरु को पावे और न सत्तनाम से मिले और वह सतगुरु का संग भी न कर सकेगा ॥

१०४—संत ज्ञान का खंडन नहीं करते पर यह कहते हैं कि पहिले अंतःकरण शुद्ध करना चाहिये तब ज्ञान का अधि-कारी होगा इस वास्ते चाहिये कि साधक

ज्ञानियों से बचा रहे और भक्ती संत सतगुरू की और सुरत शब्द मारग की करे जाय इस से अन्तःकरण भी शुद्ध होगा और नाम भी मिल जावेगा ॥

१०५–सतसंगियों को मुनासिब है कि जब कोई सेवक याने गुरू-भाई हिम्मत का बचन बोले तो उसकी मदद करें और हजो न करें क्योंकि जितना वह बचन अपनी ताक़त से ज़ियादा का बोले फिर भी उसकी मदद करना चाहिये सतगुरू अपनी मौज से उसको निबाह सकते हैं ॥

१०६–जैसे पपीहा स्वाँत की बूँद के वास्ते तड़पता है और मालिक उसकी तड़प को सुन कर मेघ को हुक्म देता है कि अब जाकर बरसो और उसकी तड़प को बुझाओ तब मेघ आनकर बरसते हैं–इसी तरह से जो नाम रूपी

अमृत की प्यास रखते हैं और उसकी प्राप्ती के वास्ते तड़प रहे हैं उनकी तड़प को सुनकर मालिक अंतरजामी सत-गुरु को हुक्म देता है कि तुम जाकर उन जीवों की तड़प को अमृत रूपी बचनों से बुझाओ तब सतगुरु प्रगट होते हैं और अमृत रूपी बचन सुना कर जीवों की तड़प को बुझाते हैं मालिक आप उनकी आग को नहीं बुझा सकता है—इस से सतगुरु की महिमा ज़बर है और बड़भागी वही जीव हैं जिनको सतगुरु वक्त के मिल जावें और उनके ऊपर निश्चय आ जावे उन्हीं की नरदेही सुफल है॥

१०७—शब्द द्वारा यह जीव बंद में आन पड़ा है और जब तक शब्द भेदी गुरू उसको नहीं मिलेंगे तब तक अपने निज स्थान को नहीं जावेगा क्योंकि

शब्द के ही रास्ते से यह चढ़कर पहुँच सकता है और कोई रास्ता इस बंद से निकलने का नहीं है ॥

१०८—बाज़े लोग सतसंग में आते हैं पर कपट लिये हुए आते हैं—बाहर से बातें बहुत बनाते हैं पर अन्तर में उनके भक्ती ज़रा भी नहीं है सो यह बात नामुनासिब है संसार में चाहे कपट से बरते पर सतगुरु के संग निष्कपट हो कर बरतना चाहिये चाहे थोड़ी प्रीत होवे पर सच्ची होवे तो एक रोज़ पक जावेगी और मालिक प्रसन्न होगा और कपट की भक्ती चाहे जितनी करो क़बूल नहीं होती है ॥

१०९—जब आँधी का गुबार होता है तो कुछ नहीं दीखता है इसी तरह पंडित और भेषों को जिनको संसार पर-मार्थी और बड़ा जानता है उनके लोभ

रूपी गुबार अन्तर में छा रहा है उनको बिल्कुल ख़बर नहीं है कि परमार्थ किसको कहते हैं उनसे मालिक कैसे राज़ी होगा इस वास्ते वह और सब उनके सेवक चौरासी जावेंगे ॥

११०—उपदेश करना दुरुस्त है पर निरपक्ष होकर करना चाहिये क्योंकि पहिले पहिचान नहीं हो सकती कि संतों के उपदेश का अधिकारी कौन है पर उपदेश करने से पहिचान हो सकती है जो अधिकारी होगा वह बचन को मानेगा और जो अधिकारी नहीं है वह तकरार और बाद करेगा इस से पहिचान हो जावेगी फिर उस से हठ नहीं करना चाहिये उपदेश करना बिल्कुल मना नहीं है क्योंकि जो उप-देश नहीं होगा तो संतों का मत कैसे प्रगट होगा ॥

१११–मालिक को दीनता प्यारी है– मुनासिब यह है कि पहिले वह काम करना कि जिस से दीनता आवे और यह सन्तों के संग से हासिल होगी–पंडित और भेष के संग से जो सिवाय धन और भोजन के कुछ नहीं चाहते उनके संग न दीनता आवेगी और न मालिक राज़ी होगा--जिसको यह बात हासिल करनी मंज़ूर होवे उसको चाहिये कि अपने वक़्त का सतगुरू तलाश करके उनकी भक्ती करे तब मालिक राज़ी होगा और जब तक संत दयाल न मिलें तब तक किसी को अपना गुरू न बनावे॥

११२–जिसको नसीहत की जाती है वही बुरा मान जाता है इस सबब से मौक़ा देख कर बात करनी चाहिये और जो कोई न माने तो उसके साथ हठ करना मुनासिब नहीं है और उसके

क़ायल करने का इरादा नहीं करना चाहिये ॥

११३—सतगुरु की पहिचान उसको होगी जो संसार की तापों में तप रहा है और जो उन तापों को सुख रूप जानता है वह कभी सतगुरु को नहीं पहिचान सक्ता है और मुख्य पहिचान वह है जो सतगुरु आप बख़्शें इस से बढ़कर कोई पहिचान नहीं है ॥

११४—संत फ़र्माते हैं कि यह कुछ ज़रूर नहीं है कि जिसका आदि होवे उसका अन्त भी होवे याने संतों ने मौज से ऐसी रचना भी रची है कि जिसका आदि है पर अन्त नहीं है ॥

११५—नाम दो प्रकार का है वर्णात्मक और धुन्यात्मक--धुन्यात्मक का फल बहुत है और वर्णात्मक का थोड़ा--जिस-को डर चौरासी का है उसको मुनासिब

है कि धुन्यात्मक नाम का प्रासी वाला सतगुरु खोजे तो चौरासी के चक्कर से बचेगा और जो वर्णात्मक नाम में रहे तो उनकी चौरासी नहीं छूटेगी ॥

११६--सब काम छोड़ कर एक अपने वक्त के सतगुरु का हुक्म मानना चाहिये और उसके मुवाफ़िक़ अमल करना चाहिये इससें इसका काम बनेगा सब का खुलासा यह है ॥

११७--जैसे संसार के पदार्थों का यह जीव मुहताज है ऐसेही परमार्थ का मुहताज नहीं है और जैसे संसारी पदार्थों के वास्ते दीन होता है ऐसा नाम के वास्ते दीन भी नहीं होता है--और जो कभी दीन भी होता है तो कपट के साथ पर सतगुरु अंतरजामी हैं वह इस तरह कब नाम की बख़्शिश करते

है--और सबब सच्ची दीनता न आने का यह है कि यह जीव बेग़रज़ है । सच यह है कि जब तक यह जीव सतगुरु के सामने सच्चा दीन न होगा तब तक जो मालिक भी उसको तारना चाहे तो नहीं तार सकता है ॥

११८--जीव जो बाहरमुख हैं वह अन्तर का हाल नहीं जानते--और जब तक अन्तरमुख उपासना शब्द की न होगी तब तक कारज नहीं सरेगा--बाहर सतगुरु की उपासना और सतसंग और अन्तर में शब्द की उपासना दोनों बराबर करनी ज़रूर हैं ॥

११९--जो वेद के मत को मानते हैं उन को वेद के स्थान की प्राप्ती भी बिना सत-गुरु वक़्त के नहीं होगी--इससे वक़्त के पूरे सतगुरु का खोज करना ज़रूर चाहिये और उनकी जितनी स्तुति करे सब

मुनासिब है--और जब वे भाग से मिल जावें तो उनकी महिमा का वारपार भी नहीं है और जो उनको ब्रह्मा से आदि लेकर जितने हो गये उन सब से बड़ा कहे तो कुछ हर्ज नहीं है क्योंकि सब तरह से वक़्त के पूरे सतगुरु की बड़ाई है--जो कि गुज़र गये हरचन्द वह पूरे थे पर हमको उन से अब कुछ हासिल नहीं हो सकता है जो कुछ हासिल होगा अपने वक़्त के संत सतगुरु से हासिल होगा ॥

१२०--कर्म ही भुलानेवाला है और कर्म ही चितानेवाला है जैसे एक लड़के को दो चार लड़के बहका कर ले गये और खेल में लगा लिया और फिर वही लड़के जब खेल चुके तब उसको उसके घर पहुँचा गये--इसी तरह कर्म के बस जीव भूला है और कर्म ही के बस चेतता है॥

१२१—इस वक्त में सिवाय गुरु भक्ती और सुरत शब्द की कमाई के और कुछ जीव से नहीं बन सकता—और जो कोई और उपाय या जतन करते हैं वह जैसे बाँबी का ठोकना है उससे साँप नहीं मारा जावेगा--मुनासिब तो साँप का पकड़ना है सो सतगुरु और शब्द की उपासना से हाथ आवेगा और जतन से नहीं पकड़ा जावेगा—जो इस बचन को न मानेंगे वह ख़ाली रहेंगे और उनको कुछ हासिल न होगा और जो जीव कि उनका उपदेश मानेंगे वह भी ख़राब होंगे ॥

१२२—संत कहते हैं कि नाम का रस मीठा है पर कोई लेता नहीं है और मिठाई जो खिलाओ तो जल्दी खा जाता है सबब इसका यह है—कोई रोगी को मिठाई खिलाओ तो कड़वी लगती है और असल में मिठाई कड़वी नहीं है रोग के सबब

से कड़वी लगती है—तो मालूम हुआ कि जगत रोगी है—अब वह उपाय कि जिस से मिठाई मीठी लगे करना चाहिये और वह उपाय यह है कि हकीम की सरन लेवे तो वह एक रोज़ इसके रोग को खो देगा और फिर वह मिठाई जो कड़वी लगती थी मीठी मालूम होगी--और परमार्थ में जो नाम का रस चाहते हैं उन को मुनासिब है कि सब उपाय छोड़कर एक सतगुरु की सरन पक्की करें तो वे समरथ हैं इस जीव को निर्मल और चंगा करलेंगे याने अन्तःकरण जो भोगों की बासना से भरा हुआ है और काम क्रोध लोभ मोह अहंकार की कीचड़ में सना हुआ है उसको सफ़ा कर देंगे और मैल और बीमारी जिसके सबब से नाम का रस इसको नहीं आता है सब दूर कर देंगे और नाम का रस भी बख़्श देंगे—

और जो यह उपाय नहीं किया जावेगा तो चौरासी के दंड का अधिकारी होगा॥

१२३—गुरू और पिता का क्रोध जल के समान है जब होवेगा तब फ़ायदा करेगा--जैसे जल हरचन्द गरम होवे पर जब अग्नी पर पड़ेगा तो उसको बुझा देता है--और दुनियादारों का क्रोध अग्नी के समान है कि जहाँ पड़ेगा वहाँ आग लगावेगा और उसको जला देगा॥

१२४—अपने वक़्त के सतगुरू से ऐसी प्रीत होनी चाहिये जैसे लड़के की माता से—जब वह अपनी माता का दूध पीता है उस वक़्त जो कोई छुड़ावे तो कैसा ब्याकुल होता है कि सम्हाले नहीं सम्हलता है--और जो गुरू को छोड़ कर चले जावें और उनका ख़याल भी न करें और स्त्री पुत्र को एक रोज़ भी न छोड़ें और गुरू को महीनों छोड़ दें तो ऐसी प्रीत

का क्या ठिकाना है और उनको नाम कैसे मिले और इस संसार से उनका उद्धार कैसे होवे—इसवास्ते जिस को अपना उद्धार मंजूर है तो उसको चाहिये कि सतगुरु से पूरी प्रीत करे तो सब काम बनेगा ॥

१२५—सतसंगियों को और साधुओं को जो सतगुरु के चरनों में सतसंग करते हैं सब लोग यह जानते हैं कि सिर्फ़ रोटी खाने को पड़े हैं—पर यह ख़याल नहीं करते कि वे चार घंटे छः घंटे रोज़ सतसंग करते हैं और जितना जिस से हो सकता है भजन भी करते हैं और नींद भर के सोते भी नहीं हैं और चरनामृत और परशादी का आधार रखते हैं-यह कितना बड़ा भाग है—और दुनियादार पेट भर के खाते हैं और नींद भर के

सोते हैं और परमार्थ जानते भी नहीं कि किसको कहते हैं ॥

१२६-जिसको सतगुरु के चरनौं में ऐसी प्रीत है कि जब तक दूर है तभी तक दूर है और जब सन्मुख आया तबही मन निश्चल होगया और ऐसा लग गया कि जैसे मक्खी उड़ती फिरती है और जब शहद मिला तब ऐसी चिमटी कि नहीं छोड़ती-उसी को ऐसी प्रीत का फल भी मिलता है-और यौं तो बहुतेरे आये और चले गये हरचन्द फ़ायदा उनको भी होता है पर कम ॥

१२७-सतसंगियौं की आपस में प्रीत होनी चाहिये और जो ईर्षा रही तो कुछ आनन्द सतसंग का नहीं आवेगा-जो प्रीत होवे तो सतसंग और भजन का आनन्द देखने में आवे ॥

१२८—संतौं का क्रोध दाती है और संसारियौं का क्रोध घाती है पर इस बात को संसारी नहीं जानते हैं वह संतौं को क्रोधी जानते हैं यह ख़बर नहीं है कि संतौं के क्रोध मैं भी दात है और मूर्खौं की दया मैं भी घात है॥

१२९--दोस्त और दुश्मन दोनौं मैं मालिक आप बैठा है फिर दोस्त की दोस्ती पर और दुश्मन की दुश्मनी पर ख़याल नहीं करना चाहिये दोनौं मैं मालिक प्रेरक है—पर यह दृष्टी सब की नहीं हो सकती है जो अपने मैं मालिक का दर्शन करते हैं उनकी ऐसी दृष्टी है और जोकि तुम सतसंग करते हो तुम को भी ऐसी आदत करना चाहिये कि जिससे बिरोध चित्त मैं न आने पावे सो यह बात जल्दी हासिल नहीं होगी जब हर रोज़ सतसंग करोगे और नित्त

अन्तर मुख अभ्यास करोगे तब कोई काल में हासिल होगी॥

१३०—सकल पसारा आदि से अन्त तक मांस का है पर इस में नाम उत्तम है सो जिन्हों ने सतगुरु को मुख्य कर लिया है वह तो बचेंगे नहीं तो जैसे और जीवों का मांस पकाया जाता है इसी तरह उनका मांस चौरासी की अग्नी में पकाया जावेगा॥

१३१—बिषयों की प्रीति में जोकि बार-म्बार नर्क को ले जाने वाली है यह मन दौड़ कर जाता है और नाम और सतगुरु की प्रीति से जोकि सदा सुख देनेवाली है भागता है॥

१३२—संत करामात नहीं दिखाते हैं अपने स्वामी की मौज में बरतते हैं और गुप्त रहते हैं—जो स्वामी को प्रगट करना अपने भक्त का मंज़ूर होवे तो करामात दिखावें और जो गुप्त रखना है तो

करामात नहीं दिखाते क्योंकि करामात दिखाये पर संतों को जल्द गुप्त होना पड़ता है और सच्चों का अकाज और झूठों की भीड़ भाड़ होती है। इस वक़्त में करामात दिखाने का हुक्म नहीं है और जो करामात देखने की चाह रखते हैं वह परमार्थी भी नहीं हैं॥

१३३–हिंदू और मुसलमान दोनों में जो अंधे हैं उनके वास्ते तीर्थ ब्रत मंदिर और मस्जिदों की पूजा है और जिनको आँख है उनके वास्ते वक़्त के सतगुरु की पूजा है हर एक के वास्ते यह बात नहीं है सिर्फ़ सतसंगी को और जिनको आँख है उन्हीं को सतगुरु की क़दर होगी। दृष्टान्त–एक शख़्स है कि वह लुक़मान हकीम की तारीफ़ करता है और वक़्त के हकीम की निन्दा करता है--इस से मालूम होता है कि उसको बीमारी और

दर्द नहीं है अगर दर्द होता तो वक़्त के हकीम की तारीफ़ करता क्योंकि लुक़मान चाहे बहुत अच्छा हकीम था पर अब कोई बीमार चाहे कि उसके नाम से रोग खोवे तो कभी नहीं दूर हो सकता है जब तक वक़्त के हकीम के पास न जायगा रोग दूर न होगा--इस तरह से जो दर्दी परमार्थ का है और संसार के सुख को बिष रूप देखता है और मोक्ष को चाह रखता है सो वह जब तक कि वक़्त के पूरे सतगुरु के पास नहीं जावेगा उसको चैन नहीं आवेगा और वही महिमा वक़्त के सतगुरु की जानेगा--और जो झूठे हैं वह तीर्थ ब्रत और मूरत पूजा और पिछलों की टेक में भरमैंगे और सतगुरु की महिमा नहीं जानैंगे॥

१३४--करनी और दया दोनों संग चलेंगी दया बिना करनी नहीं बनेगी और

करनी बिना दया नहीं होगी और जो दया को मुख्य करोगे तो आलसी हो जाओगे और फिर करनी नहीं बनेगी॥

१३५—चौरासी लाख जोनि भुगत कर जीव को गाय की जोनि मिलती है और फिर नर देही मिलती है इसमें जो जीव से अच्छी करनी बनेगी तो बराबर नर देही मिलती चली जायगी जब तक कि काम पूरा नहीं होगा, सो अच्छी करनी यह है कि अपने कुल की याद करना क्योंकि जोनि बदलती है पर जीव का कुल नहीं बदलता है वह एक ही है याने सब जीव सतनाम बंसी हैं सो यह बात बिना सतगुरु भक्ती के और कोई जतन से हासिल नहीं होगी

१३६—अन्त में जिसने जाकर बासा किया वही बसंत है और वही अच्छा बसंत है और उनको ही हमेशा बसंत

है जो चढ़कर जहाँ सब का अन्त है वहाँ बसे हैं॥

१३७–रजोगुन तमोगुन सतोगुन इन तीनों को छोड़ कर सारगुन जो भक्ती है लेना चाहिये जब ज्ञान हासिल होगा-- और पोथियों के ज्ञान का भरोसा नहीं और जो सतगुरु भक्ती की कमाई करके ज्ञान हासिल होगा वह सच्चा और पूरा ज्ञान है॥

१३८–सवाल सेवक का सतगुरु से--सुरत शब्द को क्यों नहीं पकड़ती क्योंकि शब्द सार है और संत कहते हैं कि सब पसारा शब्द का है और सुरत शब्द की अंस है। जवाब सतगुरु का–हक़ीक़त में शब्द सार है पर जब से सुरत पिंड में उतरी है तब से बाहरमुख हो गई है और बाहर शब्द में रच गई है जो शब्द में नहीं रचती तो संसार का काम किस

तरह से चलता--अब जब तक सतगुरु पूरे न मिलैं और उनकी सरन न लेवे तब तक अंतरमुख शब्द को नहीं पा सकती है, जैसे माता और पिता की सरन लेने से संसार में फस गई है ऐसे ही जब सतगुरु की और उनके सतसंग की सरन लेगी तब इस संसार के जाल से निकलेगी ॥

१३९—इस वक्त में मन के निर्मल करने के लिये सिवाय सतगुरु और नाम की भक्ती के और कोई उपाय और जुगत नहीं है और जो लोग तीर्थ और ब्रत और और जतन वास्ते निर्मल करने मन के कर रहे हैं सो उन से कुछ फ़ायदा नहीं होगा । यह सच्च है कि सतगुरु पूरे का मिलना मुश्किल है पर खोजी और संस्कारी को सहज में मिल जाते हैं ॥

१४०—कोई मुसलमान नादान ऐसा कहते हैं कि मुर्शिद याने सतगुरु को किसी से सिजदा कराना नहीं चाहिये क्योंकि मुर्शिद को तो सब में ख़ुदा नज़र आता है इसलिये ख़ुदा से सिजदा कराना मुनासिब नहीं है सो यह उनकी कम-फ़हमी है मुर्शिद का ख़ुदा दाना है और मुरीद का ख़ुदा नादान है इस सूरत में नादान ख़ुदा को दाना ख़ुदा का सिजदा करना वाजिब है और मुर्शिद अपने तईं ख़ुदा नहीं कहते वह तो अपने तईं बंदा ही मानते हैं पर मुरीद पर फ़र्ज़ है कि वह अपने मुर्शिद को ख़ुदा माने जब तक ख़ुदा नहीं मानेगा काम पूरा नहीं होगा। मौलवी रूम ने भी कहा है:—

॥ शेर ॥

चूँकि करदी ज़ाते मुर्शिद रा क़बूल ।
हम ख़ुदा दर ज़ातश आमद हम रसूल ॥

याने मुर्शिद की ज़ात में ख़ुदा और पैग़म्बर दोनों आगये—यह उपदेश तरीक़त वालों के वास्ते है शरीअत वालों के वास्ते नहीं है—और मालूम होवे कि जिस वक़्त में पैग़म्बर साहिब ज़ाहिर हुए थे उस वक़्त में इनसान को नजात याने मोक्ष अपने दरजे की दे सकते थे पर अब कुछ नहीं कर सकते हैं। अब इस वक़्त में जिस इनसान को मुर्शिद कामिल मिलेंगे और वह उन को ख़ुदा मानेगा तब काम पूरा होगा और तरह कुछ हासिल नहीं होगा। पुरानी चाल किताबों से या मौलवियों से सीख कर चलाया करें पर किसी के दिल में इश्क़ पैदा न होगा और जब तक इश्क़ न होगा वस्ल मुश्किल है सो यह इश्क़ पूरे सतगुरु की सेवा और निश्चय से हासिल होगा और कोई जतन इसकी प्राप्ती का नहीं है॥

१४१-पहिले मनुष्य को सीधी सड़क मिलनी चाहिये फिर मुक़ाम को पहुँच सकता है और सड़क सीधी बिना सतगुरु पूरे के प्राप्त नहीं होगी सो सतगुरु का तो कोई खोज नहीं करता है तीरथ मूरत बरत और नमाज़ रोज़ा और हज या विद्या पढ़ने में मिहनत करते हैं-इन कर्मों से सिवाय अहंकार के और कुछ फ़ायदा नहीं होगा और सच्चे रास्ते और सच्चे मुक़ाम का भेद सतगुरु पूरे ही से मिलेगा॥

१४२-जो लोग कि शरीअ़त याने कर्म कांड के बँधुए हैं वह हमेशा संसार में बँधे हुए रहेंगे कभी मालिक के दरबार में नहीं जावेंगे और जो सतगुरु वक़्त की सेवा तन मन धन से करेंगे वही सच्चे मालिक के दरबार में दख़ल पावेंगे-और सतगुरु आप ही मालिक हैं जो उनकी

सेवा है वह मालिक की सेवा है और जो सतगुरु को छोड़ कर मालिक को ढूँढ़ते हैं उनको मालिक कभी नहीं मिलेगा और जो सतगुरु की सेवा में लगे हैं उन को मालिक मिल गया जब आँख खुलेगी तब पहचान लेंगे और जब तक पूरी आँख न खुले तब तक संत सतगुरों के बचन के द्वारे प्रतीत करके सेवा में लगे रहैं और सतसंग करते रहैं और सतगुरु के चरनों में प्रीत और प्रतीत बढ़ाते रहैं एक दिन सब भेद खुल जावेगा ॥

१४३—मुख्य जतन सतगुरु वक्त की सेवा है इसी से अन्तःकरण शुद्ध होगा—जब अन्तःकरण शुद्ध हो गया तबही बख़्शिश नाम की होगी—इस वास्ते जो सतगुर की सेवा में लगे हैं उन्हीं पर सतगुर की कृपा है॥

१४४—अंतर और बाहर की सफ़ाई बिना शब्द के नहीं हो सकती है सो पहिले

स्थूल की सफ़ाई होके फिर अंतर की सफ़ाई होगी--इस वास्ते पहिले बाहर का बचन मानना चाहिये और जब तक यह न माना जायगा तब तक अंतर का शब्द प्राप्त न होगा ॥

१४५--भक्ती चार प्रकार की है--तन मन धन और बचन से--बचन की भक्ती हर कोई कर जाता है याने जो पंडित भेष आदिक आते हैं वह कहते हैं कि आप पूरे सन्त हैं और आप के समान इस वक्त दूसरा नहीं है और हार भी चढ़ा देते हैं पर जब उनको वह हार परशादी होकर दिया जावे तब गर्दन मोड़ लेते हैं तो मालूम हुआ कि उनका जितना कहना है वह कपट का है और अपना ब्राह्मण और भेषधारी होने का अहंकार नहीं छोड़ते और सतगुरु को गृहस्थी जानते हैं--ऐसे बचन की भक्ती बिल्कुल

झूठी है--सच्ची भक्ती उसकी है कि जिसने तन मन धन सतगुरु के अरपन कर दिया है याने इन सब प्रकार से सेवा करता है और बाक़ी सब कपटी हैं इनको भाव नहीं आवेगा योंहीं बातें बनाया करेंगे॥

१४६--सन्त सतगुरु के सतसंग में जीव का आना मुश्किल है और जो किसी सबब से आ भी गया तो ठहरना मुश्किल है क्योंकि जिस वक़्त सन्त वेद पुरान और क़ुरान सब का खंडन करके अपना मत सब से ऊँचा और न्यारा बर्णन करेंगे उस वक़्त उससे ठहरा नहीं जायगा कोई खोजी या दर्दी ठहरेगा--क्योंकि वेद मत का भी निश्चय सुनने से आया है कुछ देखा नहीं है पंडित और ब्राह्मणों के कहने से प्रतीत करी है इसी तरह संत बचन की भी प्रतीत करके जिस मुक़ाम को संत कहते हैं मान लेना चाहिये पर यह बात खोजी से बनेगी टेकी नहीं मानेगा॥

१४७—सतगुरु और सतसंग उसी को प्यारे लगेंगे जो संसार में दुखी है पर इसका कुछ नेम नहीं है—कोई संसार में दुखी भी है पर सतसंग की बिल्कुल चाह नहीं है—परमार्थियों की क़िस्म ही जुदी है—वही परमार्थी हैं जिनको चाहे संसार का सुख भी भली प्रकार प्राप्त होवे पर बिना सतगुरु और सतसंग के उस सुख को दुख रूप देखते हैं—और संसारी वह हैं कि जो संसार के सुखों को चाहते हैं और उनके न मिलने और छोड़ने में दुखी होते हैं और यह नहीं जानते कि संसार के सुख सब दुख रूप हैं और आख़िर को धोखा देंगे॥

१४८—इस जीव के मैल दूर करने के लिये सिवाय सतसंग के और कोई उपाय नहीं है--जैसे साबुन में यह ताक़त रक्खी है कि कैसा ही मैला कपड़ा होवे और जब

साबुन लगा कर धोया तुरत साफ़ हो गया या कि घास का ढेर जमा है और जब उसमें एक चिनगी डाल दी एक छिन में सब भस्म हो जाता है—इसी तरह सतसंग है कि इस में जन्म २ के कर्म कट जाते हैं और संस्कार दिन बदिन बदलता जाता है ॥

१४९—संतों के बचनों को जो वेद से मिलाते हैं वह बड़े नादान हैं—संतों की महिमा आप वेद का कर्ता नहीं जानता है फिर वेद क्या जाने--और संत किसी के क़ैदी नहीं हैं जिस वक़्त जो मसलहत और मुनासिब जानते हैं वही रास्ता जारी फ़रमाते हैं, जो मानेंगे उनको फ़ायदा होगा और जो नहीं मानेंगे वह अभागी रहेंगे क्योंकि दुनियाँ में भी जिस राजा का राज होता है वह अपना क़ानून चलाता है जो उसको मानते हैं वह

फ़ायदा उठाते हैं और जो हुक्म अदूली करते हैं वह अपना नुक़सान करते हैं और हुक्म अदूली की सज़ा के भागी होते हैं ॥

१५०--संत दयाल इस जीव को पुकार पुकार कर कहते हैं कि तू सत्यपुरुष का पुत्र है ऐसी करनी मत कर जो जम की चोट खानी पड़े पर यह जीव नहीं मानता है और संतों के बचन की प्रतीत नहीं करता है वही काम करता है कि जिससे जम की चोट खावे--संतों को इतनी ताक़त है कि चाहें तो इसको ज़बरदस्ती मना सकते हैं और जम को भी हटा सकते हैं पर वह अपनी दयालता का अंग नहीं छोड़ते हैं सिवाय बचन के और किसी तरह से जीव को नहीं ताड़ते हैं--जो बड़भागी हैं वह उनके बचन को मानते हैं और जो अभागी हैं वह नहीं मानते हैं ॥

१५१--संतों का मतलब जीव को समझाने और बुझाने से यह है कि यह सब तरफ़ से हट कर एक सतगुरु को ऐसे पकड़े कि जैसे स्त्री पति को पकड़ती है कि फिर दूसरे से उसको ग़रज़ नहीं रहती पर आज कल के गुरुओं का यह हाल है कि चेला तो कर लेते हैं और उसको उपदेश तीर्थ ब्रत और मूर्ति का करते हैं अपनी पूजा नहीं बताते हैं सबब इस का यह है कि यह लोग गुरुवाई के लायक़ नहीं हैं उनको गुरू बनाना नहीं चाहिये यह तो आप ही भरमे हुए हैं और औरों को भी भरमाते और भटकाते हैं। गुरु पदवी सिर्फ़ संतों की है और जीव का उद्धार जब होगा तब संत सतगुरु के द्वारे होगा संसारी गुरुओं से उद्धार नहीं हो सकता है--ब्रह्मा बिष्णु महादेव और ईश्वर जीव की चौरासी नहीं छुड़ा सकते

हैं पर संत बचा सकते हैं और संतों के सतसंग में वही जीव आवेगा जो संसार का डरा हुआ और तपा हुआ है और किसी का काम नहीं जो संतों के सन्मुख ठहर जावे । जब संतों की महिमा इस तरह पर जीव के चित्त में समा जावे तो फिर पंडित और भेष के फंदे में नहीं फँसेगा सिर्फ़ सतगुरु संत की तरफ़ श्रद्धा लावेगा और उन्हीं को पकड़ेगा और यही चाहिये है कि जब तक संत सतगुरु पूरे न मिलें तब तक उनका खोज करे जाय जो उनके खोज में जीव की देह भी छूट जाय तो कुछ हर्ज नहीं है क्योंकि फिर नरदेही मिलेगी और संत सतगुरु भी ज़रूर मिलेंगे और जो चाह ज़बर होगी तो इसी जन्म में मेला हो जावेगा और जो पंडित और भेष के जाल में फँस गया तो चाहे संसार में धन पुत्र स्त्री और मान प्राप्त हो

जावे पर चौरासी के चक्कर से नहीं बचेगा और फिर नरदेही मिलने का भरोसा नहीं है॥

१५२–गुरुमुख वही है जो सतगुरु के हुक्म में बरते, हुक्म से बाहर न होवे, और जब तक ऐसा अंग न होगा तब तक उस पद को भी नहीं पावेगा। यह बात मुश्किल है पर जो कोई ऐसी होशियारी रक्खे कि जिसमें सतगुरु राज़ी होवें वही काम करे याने जो सेवा भी करे तो उस में रज़ामंदी सतगुरु की मुख्य रक्खे और इतनी पहिचान करता रहे कि मेरी सेवा सतगुरु को पसन्द है या नहीं या मेरी नाराज़गी का ख़याल करके क़बूल कर रहे हैं जो यह समझ में आ जावे कि इसमें सतगुरु को तकलीफ़ है सिर्फ़ मेरी हठ से मंज़ूर कर रहे हैं तो उस सेवा को फ़ौरन छोड़ देवे और जिसका ऐसा

अंग है वही गुरुमुख बनेगा और जिसकी ऐसी हालत नहीं है उसको मुनासिब है कि सतसंग नेम से करे और बचन को चित्त से सुने और याद रक्खे तो उस का अंग बदलता जावेगा ॥

१५३—अहंकार की मैल सब जीवों के हृदय में धरी हुई है और जब तक यह न जावेगी तब तक परमार्थ नहीं बनेगा और यह मैल बाहरमुख उपासना से नहीं जा सकती इस वास्ते लाज़िम पड़ा कि अंतरमुख उपासना की जावे और इस उपासना का भेद सिवाय पूरे सत-गुरू के और कोई नहीं दे सकता है इस वास्ते हर एक जीव परमार्थी को मुना-सिब है कि पहिले अपने वक़्त का पूरा सतगुरू खोजे और उनकी सेवा करे तब काम पूरा बनेगा ॥

१५४—इस जीव के सब बैरी हैं कोई मित्र नहीं--मन जो तीन गुन से मिला हुआ है वह भी इस जीव को ऐसे देखता है जैसे बिल्ली चूहे के खाने का इरादा रखती है--सिवाय इसके जो जीव काल के हैं और उसका हुक्म मानते हैं याने मन के कहने से चलते हैं तो भी काल उन को दुख देता है इसी तरह सब जीव दुखी रहते हैं--पर जो जीव सतगुरु के हैं उन के ऊपर सतगुरु की दया है और काल भी उनसे डरता है और उनका सहायक रहता है इस वास्ते सब को चाहिये कि सतगुरु वक़्त की सरन लेवें तो यहाँ भी और वहाँ भी उनका बचाव और रक्षा होगी ॥

१५५—जब कोई शख़्स हज़ार दो हज़ार आदमी भरती करना चाहता है तो हज़ारों उम्मेदवार जमा होते हैं पर उन

में से सौ पचास क़ाबिल पसन्द निकलते हैं और बाक़ी दर्जे बदर्जे कम होते हैं और कोई बिल्कुल नालायक़ निकलते हैं—इसी तरह से जब संत सतगुरु सतसंग जारी फ़रमाते हैं तो बहुत से जीव अनेक तरह की बासना लेकर आते हैं—जो जो निर्मल बासना परमार्थ की रखते हैं उनको सतगुरु छाँट लेते हैं और बाक़ी को उम्मेदवार करते हैं और जो भाग्यवान परमार्थ के हैं वही संतों के सतसंग में ठहरते हैं बाक़ी आपही हट जाते हैं उन से वहाँ की झटक नहीं सही जाती क्योंकि सच्ची और निर्मल चाह परमार्थ की नहीं रखते हैं—इस वास्ते संत भी उन पर ज़ोर नहीं करते हैं आइन्दा के वास्ते दया करते हैं ॥

१५९—हज़ारों ब्रह्मा हज़ारों गोरख हज़ारों नाथ और हज़ारों पैग़म्बर तृष्णा

की अग्नि में जल रहे हैं क्योंकि उनको सतगुरू नहीं मिले—और अगर कोई यह सवाल करे कि जब ऐसे बड़े बड़ों को सतगुरू की पहिचान नहीं हुई तो फिर जीव कैसे पहिचान सकता है उसका जवाब यह है कि यह सब अपने अपने अहंकार में रहे इनको सतगुरू पर निश्चय नहीं आया और इसी सबब से सतगुरू ने आप को इन पर प्रगट नहीं किया क्यों-कि यह रचना के काम के अधिकारी थे और उनसे यही काम लेना मंज़ूर था अगर उनको सतगुरू पर निश्चय आजा-ता तो फिर इनसे रचना का काम नहीं हो सकता और दुनिया का बिल्कुल बि-गाड़ना भी मंज़ूर नहीं है—जो जीव कि संसारी हैं उनके वास्ते ये लोग पैदा किये गये हैं कि उनकी सम्हाल करें उनके लिये सतगुरू का उपदेश नहीं है और

न वह सतगुरु के उपदेश को मानेंगे और न सतगुरु का भाव उनके चित्त में समावेगा--अब सतगुरु पुकार कर कहते हैं कि जब ऐसे बड़े बड़े जिनका निश्चय हज़ारों जीव बाँधे हुए हैं चौरासी के चक्कर और नरक की आग से न बचे तो फिर जीव कैसे बचेंगे--पर इस बचन की प्रतीत वही जीव लावेंगे जिनका भाग परमार्थ का है और चौरासी से छुटकारा होनेवाला है--याने जिनको सच्ची और निर्मल चाह सच्चे मालिक से मिलने की है-और जिनके संसारी बासना अनेक तरह की धसी हुई है वह सतगुरु के बचन की प्रतीत नहीं कर सकते--पर यह सब को मालूम होना चाहिये कि जन्म मरन से बचाने वाले और सदा सुख के स्थान के बख़्शने वाले और निज धाम में पहुँचाने वाले सिर्फ़ संत सतगुरु हैं और ब्रह्मा विष्णु महादेव

और अवतार और देवता और पीर पैग़म्बर और औलिया आपही निगुरे हैं याने इनको संत सतगुरु नहीं मिले और न चौरासी के चक्कर से आप बचे और न दूसरे को बचा सकते हैं--जो जो इस बचन की प्रतीत लाकर सतगुरु का खोज करेंगे वही सतगुरु के अधिकारी जीव हैं और उन्हीं को सतगुरु मिलेंगे और अपनी दया से उनका काम पूरा बनावेंगे और फिर वही जीव जन्म मरन से रहित हो जावेंगे॥

१५७—दो चोर इस जीव के पीछे पड़े हैं एक काल दूसरा मन—जब तक ये दोनों न मारे जावेंगे तब तक परमार्थ नहीं बनेगा और सिवाय संत सतगुरु के इनका मारनेवाला और कोई नहीं है--इस वास्ते जो कोई संत सतगुरु की सरन लेगा वही इन पर फ़तह पावेगा और वही पार जावेगा।

१५८—जो सतगुरु के मँगता हैं उनकी मान प्रतिष्ठा नहीं जाती है—क्योंकि सब सतगुरु के मँगता हैं—ऐसा रचना में कोई नहीं है जो सतगुरु का मँगता न होवे और जिनको सतगुरु से माँगने में लाज और शरम है वह काल के रूबरू हीन होंगे और उसके डंड उठावेंगे—बड़भागी वही हैं जो सतगुरु के मँगता हैं॥

१५९—वेद और पुरान का जिनको निश्चय है वह कहते हैं कि लवमात्र के सतसंग से जीव के पाप दूर हो जाते हैं फिर संतों के सतसंग के फल का क्या बर्णन किया जावे कि जिसकी महिमा वेद और पुरान भी नहीं कह सकते। जिनको संतों का सतसंग प्राप्त है तो इसमें कुछ शक नहीं है कि उनके दिन भर के पाप तो ज़रूर साफ़ होते होंगे—यह फल तो उनको हासिल होगा जो साधारण

तौर पर नित्त सतसंग में आते हैं और बचन सुनते हैं—और जो कि संतों का निश्चय रखते हैं और सतगुरु वक़्त से प्रीत करते हैं उसके फल का तो कुछ वर्णन नहीं हो सकता ॥

१६०—संतों की जो स्तुति करता है या निन्दा करता है दोनों का उद्धार होगा पर जो सेवक होकर निन्दा करेगा उस का अकाज होगा उसकी निन्दा की बर्दाश्त नहीं है ॥

१६१—फ़ायदा अंतर के सुनने और मानने से होता है—बाहर के कहने और सुनने वालों के बचन में असर नहीं होता क्योंकि बहुत से पंडित और भेष पोथियाँ पढ़ाते और सुनाते हैं पर ज़रा भी असर उनके दिल में नहीं दीखता ॥

१६२—जब तक सतगुरु की दया न होगी तब तक जीव को निश्चय नहीं आवेगा

और जिसको सतगुरु के चरनों में प्रीत और प्रतीत है उसी को दयापात्र समझना चाहिये। बहुत से लोग यह चाहते हैं कि हमारे रिश्तेदार और कुटुम्बियों को सतगुरु के चरनों में निश्चय आजावे यह चाह तो बुरी नहीं है पर इतना समझना चाहिये कि जब तक सतगुरु दया दृष्टि न फ़र्मावेंगे तब तक प्रीत और प्रतीत आनी मुश्किल है। यह बात सतगुरु की मौज पर छोड़ देना चाहिये क्योंकि जब वे चाहेंगे एक छिन में प्रीत और प्रतीत बख़्श देंगे और संसार के जाल से निकाल लेवेंगे॥

१९३—संतों के सतसंगी को मरते वक़्त तकलीफ़ नहीं होती बल्कि और सूरता आजाती है क्योंकि वह पहिले से मौत को याद रखता है और संसार में कारज मात्र बरतता है। उसकी संसार की

जड़ पहिले से कटी हुई है—जैसे कटे हुए दरख़्त की हरियाली चन्द रोज़ की है इसी तरह संतों के सतसंगी का संसारी बयोहार समझना चाहिये ॥

१६४—संतों का सतसंग करना बहुत मुश्किल है। किसी का यह हाल है कि सतसंग करते हैं और फिर नहीं करते याने बैठे बचन सुनते नज़र आते हैं पर मानने के वास्ते नहीं सुनते फिर उनको सतसंग क्या फ़ायदा करेगा—सुनना और समझना उनका ही दुरुस्त है जिनके हृदय में असर होता है और उसके मुआफ़िक़ थोड़ा या बहुत बरताव भी है॥

१६५—ग्रन्थों में सब जगह थोड़ा या बहुत रौला पड़ा रहता है। कहीं एक बात का खंडन और कहीं मंडन किया है जीव किस को माने और किस को न माने—इस वास्ते जब तक सतगुरु पूरे न मिलें

जीव की ताक़त नहीं कि इस बात का निर्णय कर सके। ग्रन्थ से गवाही मिल सकती है मारग हाथ नहीं आ सकता मारग के भेदी संत सतगुरु हैं--यह उन से मिलेगा और किसी से नहीं हाथ लग सकता है॥

१६६—साध वही है जिसने सब आसरे छोड़ कर एक सतगुरु का आसरा साध लिया है और सब संतों का मूल मत जो शब्द है उसको ढूंढ़कर पकड़ा है और जिस काम में कि गुरुभक्ती में कसर पड़े उसको नहीं करता है इस वास्ते वही गुरुभक्त है और वही साध है॥

१६७—जिनको शौक़ परमार्थ और ख़ौफ़ चौरासी का है वही सतगुरु से प्रीत करेंगे और प्रतीत भी सतगुरु की उन्हीं को आवेगी और जो परचा चाहते हैं और बिना परचे प्रतीत नहीं करते वह

परमार्थी नहीं हैं उनको सतगुरु पर भाव नहीं आवेगा—और परचा देकर प्रतीत कराने की मौज नहीं है क्योंकि परचे की प्रतीत का भरोसा नहीं है। प्रतीत उन्हीं की सच्ची है जिनको सतगुरु के दर्शन और बचन प्यारे लगते हैं और बिना उनके दिल को चैन नहीं आता—ऐसे जो जीव हैं वह परचा भी देखते हैं और जो निरे परचे और करामात के गाहक हैं उनको परचा दिखाने की मौज नहीं है॥

१६८—सिवाय शब्द के और कोई रास्ता इस जीव को अपने मुक़ाम में पहुँचाने का नहीं है और जो और रास्ते हैं वह काल के रास्ते हैं। शब्द हर एक के घट में मौजूद है इसलिये उसको सुनना चाहिये जो नहीं सुनते हैं वह अंत में दुख सहेंगे। बाहर के गाने बजाने

से यह बात हासिल न होगी--और ज़ियादा मार उन पर पड़ेगी जो संतों के घर में हैं और फिर शब्द का खोज नहीं करते ॥

१६८—पंडितों ने अपनी क़दर यों खोई कि जीवों को तीरथ और मूरत में लगाया और जो संतों ने अपना मत वेद और शास्त्र से न्यारा कहा पर पंडित और भेष ने उसकी क़दर न जानी और जीवों को भरमा दिया और अपनी क़दर खोई। अब संत प्रगट यह कहते हैं कि तीर्थ करनेवाले और शास्त्र पढ़नेवाले और मूरत के पूजनेवाले सब चौरासी में चले जाते हैं और संत दया करके समझाते हैं कि कर्म भर्म छोड़कर सतगुरु वक़्त का खोज करके उनकी सरन लो और कोई उपाय चौरासी से बचने का नहीं है। जब चाहो तब करो पर जब करोगे

तब यही जतन करना पड़ेगा बिना इस के चौरासी से बचाव नहीं हो सकता है चाहे मानो चाहे न मानो॥

१७०--जीव और ब्रह्म दोनों भाई हैं--सिर्फ़ इतना फ़र्क़ है कि उसको कामदारी मिली है और जीव सब उसके हुक्म में हैं--देह का बनाना और पालन करना सपुर्द ब्रह्मा विष्णु महादेव के है और संसार में फँसाना भी इन्हीं का काम है--पर मुक्ति का देना सिवाय संतों के दूसरे के इख़्तियार में नहीं है क्योंकि उस मालिक के कि जिसके अंस यह जीव और ब्रह्म हैं सिर्फ़ संत ही शरीक हैं--याने वे आप मालिक हैं क्योंकि उस मालिक ने आप संत स्वरूप जीवों के उद्धार के निमित्त धरा है और इस स्वरूप से जीव को वह स्थान देता है जो ब्रह्मा विष्णु

महादेव को भी हासिल नहीं है पर संत चरन पर प्रीत और प्रतीत दृढ़ होनी चाहिये ॥

१७१—पहिले एक ही था फिर दो हुए फिर तीन हुए और फिर अनेक हज़ारों लाखों और बेशुमार पर नौबत पहुँची। अब जिसको पूरे सतगुरु जो कि उस एक से एक हो रहे हैं और उसी एक का स्वरूप हैं मिलें तब वह उनकी दया से अनेकता के भरम से बचे और अपने निज स्थान में पहुँचे ।

१७२—संसार की जो करतूत है उसका फल जीव को प्रत्यक्ष नज़र आई देता है इस सबब से संसार में जल्दी फँस जाता है—और परमार्थ का फल गुप्त है उस पर जल्दी निश्चय नहीं आता है और पहिले निश्चय ज़रूर है क्योंकि बिना निश्चय के करतूत कुछ नहीं बनेगी और जब कुछ

करतूत न बनी तो फल कैसे मिले और तरक्की कैसे होवे ॥

१७३—वह जो सत्त है जप तप और मौन साधन से नहीं मिलता है। ऐसी करतूत वाले सब थक रहे किसी ने उस सत्त का जिसको संतों ने पाया है भेद नहीं पाया। वह भेद सतगुरु वक्त की सेवा और सरन से मिल सकता है क्योंकि उस सत्त ने आप सतगुरु रूप धरा है—इस वास्ते सब जीवों को जो सत्त की प्राप्ती की चाह रखते हैं चाहिये कि और कर्म और भर्म छोड़ कर सतगुरु वक्त की प्रसन्नता के लिये मिहनत करें तो एक रोज़ उस पद को पावेंगे ॥

१७४—बाल बिधवा और बाल साध को वक्त याने उमर का काटना निहायत मुश्किल हो जाता है और बहुतेरे तो ख़राब हो जाते हैं पर जो उनको

सतगुरु पूरे मिल जावें और उन पर निश्चय आजावे तो दोनों का वक्त सहज में कट जावे—और जो विद्या गुरू मिले तो विद्या या तीर्थ ब्रत में या मूरत पूजा में बृथा जन्म उनका बरबाद जावेगा और जन्म मरन की फाँसी नहीं कटेगी—इस वास्ते उनको और सब जीवों को चाहिये कि जितनी हो सके सतगुरु पूरे के खोज में मिहनत करें—जो उनके खोज में इसका शरीर भी छूट जाय तो भी सोच न करे क्योंकि जब सतगुरु के मिलने की आसा इसके चित्त में दृढ़ हुई तो वह ठीक भक्ती सच्चे मालिक की है उसको मालिक सतगुरु रूप से ज़रूर मिलेगा ॥

१७५—जीव इस वक्त में ऐसे अभागी हैं कि संतों के बचन की प्रतीत नहीं करते और वेद शास्त्र कुरान पुरान की

बात को खूब पकड़ते हैं--यहाँ तक कि वहाँ कुछ परचा भी नहीं मिलता पर काल ने ऐसा अड़ंगा लगाया है कि अपने मतलब के बचन को जीव से मनवा लेता है और संत जो दया करके इसको भली प्रकार समझाते हैं सो नहीं मानता है और उनसे परचे माँगता है--इस से मालूम हुआ कि ये जीव काल के हैं जो बिना परचे संतों का बचन नहीं मानना चाहते और काल का बचन बिना परचे मानते हैं--ऐसे जीवों पर संत भी तवज्जह नहीं करते ॥

१७६--प्राण जोग और बुद्धि जोग की गम आकाश तक है। इसके आगे सुरत शब्द के आसरे जा सकती है और वहाँ पहुँच कर अजायब पुरुष का दर्शन प्राप्त हो सकता है जो कि सतयुग द्वापर त्रेता में सब से गुप्त रहा किसी को उसका भेद

नहीं मिला अब कलयुग में संतों ने प्रगट किया है। जिनको संतों के बचन की प्रतीत है वही उस अजायब पुरुष का दर्शन पावेंगे और मुक्ति पद को प्राप्त होंगे॥

१७७—आज कल ऐसा अन्धेर हो रहा है कि बहुतेरे साधू पंडित होने की अभि-लाषा करके काशी जाते हैं और पंडितों के संग में अपना जन्म गँवाते हैं। उनको मुनासिब था कि जब साध हुए थे तो सतगुरु पूरे का खोज करके उनकी सेवा और सतसंग और कुछ अंतरमुख अभ्यास याने साधना करते जिस से साध बन जाते और अपने निज स्थान को पाते न कि विद्या पढ़ने में अपने जन्म को गँवाया—पंडितों के संग से कोई भी जन्म मरन से नहीं बच सकता क्योंकि ब्रह्मा जो वेद का कर्ता है आपही चौरासी के चक्कर से नहीं निकल सकता फिर पंडितों

की क्या ताक़त कि उससे बचैं—और आज कल के पंडित और ज्ञानी तो निरे बाचक हैं और सच्ची पंडिताई और सच्चा ज्ञान भी उनको प्राप्त नहीं है। यह सब चौरासी के अधिकारी हैं क्योंकि सिवाय सतगुरु वक़्त के और किसी की ताक़त नहीं कि जीवों को चौरासी से बचाकर निज घर पहुँचावे॥

१७८—काल ने अपना जाल संसार में किस ख़ूबसूरती के साथ बिछाया है कि जो जीव परमार्थ कर रहे हैं और जानते हैं कि हम बड़े परमार्थी हैं और लोग भी उनकी तारीफ़ करते हैं कि ये बड़ा परमार्थ कमा रहे हैं उनका हाल जो ग़ौर करके देखा जावे तो परमार्थ का एक किनका भी नहीं पाया जाता याने तीर्थ ब्रत और जप और मूरत पूजा में मिहनत कर रहे हैं और नेम

आचार बहुत भाँत करते हैं इस से सिवाय अहंकार के और कुछ नहीं प्राप्त होता। इस वक़्त में यह करतूत मालिक को मंज़ूर नहीं है और न यह चौरासी से बचा सकती है इस वास्ते सब चौरासी में चले जाते हैं–जिसको चौरासी से बचना मंज़ूर है उसको चाहिये कि सतगुरु वक़्त की भक्ती करे सिवाय इसके दूसरा उपाय बचने का नहीं है–पर क्या कहा जावे कि जीवों को और साधना में तो मिहनत करना मंज़ूर है पर सतगुरु भक्ती क़बूल नहीं करते। बाज़े ग्रन्थ वग़ैरह की टेक में बँधे हुए हैं और उसी को गुरू मानते हैं। अब ग़ौर करना चाहिये कि ग्रन्थ को गुरू मानने से क्या फ़ायदा होगा और कहाँ ऐसा हुकुम है। ग्रन्थ तो जड़ है उसकी कोई सेवा नहीं हो सकती है–फिर क्या गुरु भक्ती ऐसे जीवों से बन आवेगी। ग्रन्थ

की भक्ती यह है कि जो उस में बचन लिखा है उस पर अमल करे याने उस में जो लिखा है कि सतगुरू का खोज करके उनकी सेवा करे और सरन लेवे इस बचन को माने और जब यह बचन न माना गया तो ग्रन्थ की टेक झूठी है। इनका भी वही हाल समझना चाहिये जो कि मूरत पूजावालों का है—पर सबब इस ग़लती का यह है कि जीवों को कोई सच्चा समझाने वाला नहीं मिलता इस सबब से सब भरम और भूल में पड़े हैं और जो गुरू उनको मिलते हैं वह आप कभी चेले नहीं हुए और जीवों को भटकाते और भरमाते हैं क्या पंडित क्या भेष सब का यही हाल है—इनमें कोई भी सतगुरू और सतगुरू भक्ती की महिमा को नहीं जानता—किताब और पोथी और पुरानी रस्म और लीक में आप भी बँधे हैं और

उन्हीं में जीवों को भी बाँधते चले जाते हैं। सतगुरु भक्ती का उपदेश कि जिस से जीव का छुटकारा होवे और निज घर अपना मिले कोई नहीं करता। यह उपदेश सिर्फ़ संत याने आप सत्यपुरुष जब संसार में प्रगट होते हैं करते हैं क्योंकि यह सब से उत्तम मारग है और जल्दी से जीव का उद्धार इस में होता है। पर इस उपदेश को वह जीव जो संस्कारी हैं मानेंगे और सतगुरु का खोज भी वही करेंगे और जो लोग कि ऊपरी खेल और चमत्कार में राज़ी होते हैं उन से सतगुरु भक्ती की कमाई जिसमें तन मन और धन पर चोट पड़ती है नहीं बनेगी—और उत्तम संस्कारी वही हैं जो संतगुरु और नाम की मुख्यता करें॥

१७८—संसारी जीव मीठा सलोना भोजन खाकर प्रसन्न होते हैं और अच्छे

बस्त्र पहिन कर मगन होते हैं—सो यह सब बृथा है--और गुरुमुख को कौनसा पदार्थ मीठा और सलोना और कौन-सा बस्त्र प्यारा लगता है उसका बर्णन सन्त सतगुरु इस तरह करते हैं कि गुरु-मुख वह है जिसको सतगुरु का बोलना मीठा लगता है--क्योंकि इससे ज़ियादा कोई पदार्थ रसीला नहीं है--और सत-गुरु के बचन का सुनना सलोना लगता है--और सतगुरु के ऊपर भाव का आना गुरुमुख का पैराहन है—सब का सार यह है—पर यह हाल सच्चे और निर्मल पर-मार्थी का है—उसी को यह पदार्थ ऐसे प्यारे लगेंगे जैसा कि ऊपर कहा है और संसारी जीवों को उन से नफ़रत होगी॥

१८०—आज कल के ज्ञानी वेद को पहिले कहते हैं और सन्तों को पीछे

बताते हैं। यह इनकी बड़ी भूल है और सबब उसका यह है कि यह उनको संत जानते हैं कि जो वेद को पढ़कर उसके मुवाफ़िक़ चलते हैं और जिनको कुछ थोड़ी सी साध गती हासिल हुई है। पर जो संत कि वेद के कर्ता के कर्ता हैं उनकी इनको बिलकुल ख़बर नहीं है। जो वेद पढ़कर संत कहलाते हैं वह इन सन्तों के सेवकों की भी बराबरी नहीं कर सकते हैं। जैसे एक शख़्स ने विद्या तो पढ़ी पर नौकरी न पाई--दूसरे ने विद्या कम पढ़ी पर नौकरी बड़े दरबार में पाई और उस पर हुशियार है--फिर विद्या-वाला उसकी बराबरी नहीं कर सकता है। यही हाल आज कल के ज्ञानियों का है कि विद्या तो ख़ूब पढ़ी पर नौकरी नहीं करी याने सतगुरू की भक्ती प्राप्त नहीं हुई और सन्तों के सेवक चाहे मूरख भी

हैं पर उनको भक्ती और सरन पूरे सतगुरु की प्राप्त है तो वह एक रोज़ पूरे पद को पावेंगे और बाचक जोगी और ज्ञानी चौरासी में भटका खावेंगे॥

१८१—पाँचों शास्त्रों का दोष तो वेदान्त ने निकाला और वेदान्त का दोष अब संत सतगुरु निकालते हैं। सतयुग त्रेता और द्वापर में इन शास्त्रों की पोल नहीं निकली क्योंकि जब सन्त प्रगट नहीं हुए थे। अब कलियुग में वास्ते उद्धार जीवों के सन्तों ने चरन पधारे हैं और सब मतों के दोष और ग़लतियों को खोल कर जनाते हैं और सच्चा और सीधा रास्ता उद्धार का बतलाते हैं--पर जीवों की ऐसी ओछी मति है कि उनके बचन को नहीं मानते और उन पर प्रतीत नहीं लाते हैं। और कहने से मालूम होगा कि वेद मत का निश्चय भी तो पढ़कर था

सुनकर किया है—कुछ कमाई उसकी नहीं करी और न कर सकते हैं—क्योंकि जो अभ्यास कि वेद में लिखा है उसकी कमाई इस जुग में नहीं बन सकती है और कमाईवाले पर इनको प्रतीत नहीं, नहीं तो उससे जुगत कमाई की संतों की रीत से दरियाफ़्त करके अभ्यास में लग सकते हैं—और जो सिर्फ़ पोथियों के आसरे रहे और उन्हीं को पढ़ा किये तो हरगिज जुक्ति उन से हासिल नहीं होगी पर विद्या का अहंकार पैदा होगा कि वह और भी अन्तःकरण को मलीन करेगा और क़ाबिल कमाने जुक्ती के भी नहीं रहेगा। आजकल यही हाल देखने में आता है कि बातें तो बहुतसी बनाते हैं पर कमाई कुछ भी नहीं—इस वास्ते परमार्थी जीवों को मुनासिब है कि सिवाय सतगुरु भक्ती या खोज सतगुरु के और कुछ काम

न करें—क्योंकि और कोई करतूत से अन्तःकरण की शुद्धी इस जुग में नहीं हो सकती है—और जब अन्तःकरण की शुद्धी न हुई तो मुक्ति कैसे प्राप्त होगी—और सिवाय सन्त सतगुरु के कोई जुक्ती प्राप्ती धुरपद की नहीं बतला सकता है क्योंकि उस घर के भेदी सिर्फ़ वही हैं और किसी को यह भेद नहीं मालूम है—और ऐसे जो सन्त सतगुरु हैं उन्हीं की सेवा और भक्ती से अन्तःकरण की शुद्धी और फिर उन्हीं की दया और मेहर से मुक्ति पद की प्राप्ती होगी और जुक्ती की कमाई भी बन आवेगी। सिवाय इसके और दूसरा उपाय उद्धार का नहीं है॥

१८२—भक्ती का बीज सिवाय सन्त सतगुरु के और कोई नहीं डाल सकता है। जो सन्त सतगुरु दयाल हैं वही इस जीव को सीधा रास्ता बतावेंगे और बाक़ी सब

भरमाने और भटकाने वाले हैं और आपही भरम में पड़े हुए हैं—क्योंकि ग़ौर करो कि ईंट पत्थर के बने हुए जो मन्दिर हैं और उनमें पत्थर की बनाई हुई मूरत जिसको आप आदमी ने गढ़ा है रखकर भगवान मानते हैं और लोगों से उसको पुजवाते हैं और जो मन्दिर कि मालिक का बनाया हुआ है और जिसमें वह आप आनकर बैठा है और जहाँ घंटा संख और नाना प्रकार के बाजे हर वक़्त बज रहे हैं और नित्त आरती हो रही है उसका भेद इस जीव को नहीं बताते हैं। इसलिये ऐसे जो अंधे हैं वह जब आपही भूल में पड़े हैं—वह और को भी रास्ता भुलाते हैं और बजाय जीवों के कारज सँवारने के उनका अकाज करते हैं। अंधा अंधे को क्या रास्ता बता-वेगा—इस वास्ते कहा जाता है कि सतगुरु

खोजो। जब तक सतगुरू नहीं मिलेंगे तब तक अन्तर का भेद हरगिज़ प्राप्त नहीं होगा—और सतगुरू वही हैं जिनका इश्क़ शब्द में लगा हुआ है और अन्तर का भेद और रास्ता निज घर का शब्द के रास्ते से बताते हैं और अगर बाहर की करतूत से कोई उनको परखा चाहे तो हरगिज़ परख में नहीं आवेंगे। कुल जीव नादान और अंधे हैं—इनकी क्या ताक़त कि सन्त सतगुरू जो सुझाके हैं उनको परख लेवें और पकड़ लेवें। अंधा सुझाके को नहीं पकड़ सकता है पर सुझाका जिसको चाहे अपने को पकड़ा सकता है। इस वास्ते दुनिया के जीवों की ताक़त नहीं है कि सतगुरू को पहिचान लेवें और सतगुरू अपनी मौज से चाहें तो हर तरह से इसको जना सकते हैं। पहिले इसी क़दर पहिचान काफ़ी है कि जो घट का भेद

बतावें शब्द मारग का उपदेश करें उनको सतगुरु जाने--और इतना देख लेवे कि वह आप भी शब्द में रत हैं या नहीं--घट का भेद सिवाय सन्त सतगुरु के दूसरे के पास नहीं है या जिसको उन्हों ने बख़शा होगा--और सतगुरु किसी बानी बचन या ग्रन्थ के आसरे नहीं हैं--वह आप मालिक रूप हैं--और जब तक कि घट में अभ्यास सन्त सतगुरु की दया और मेहर लेकर न करेगा तब तक निज पद को प्राप्त नहीं होगा--और सन्त सतगुरु की मौज है कि चाहे जिस जीव को जैसे चाहें पार करें याने उनकी प्रीत और प्रतीत मुख्य है--फिर चाहें वह पहिले सतसंग करावें या अभ्यास शब्द का करावें चाहें पहिले सेवा में लगावें वह सब तरह समर्थ हैं और जो प्रसन्न होवें तो एक छिन में

चाहें जो बख़्श देवें--पर उनका प्रसन्न होना ज़रूर है॥

१८३—जिसको एक वक़्त बिरह उठी याने शौक़ मालिक के मिलने का पैदा हुआ जो उस हालत में सतगुरु पूरे न मिले तो वह बिरह निष्फल जावेगी। अगर बिरही यह दावा करे कि बिना सतगुरु के पद को पाऊँगा यह ग़लत है—क्योंकि बिना सतगुरु वक़्त के मिले पद का मिलना नामुमकिन है चाहे बिरही होवे या नहीं दोनों को सतगुरु की ज़रूरत है—और जो बिरह किसी क़दर सच्ची भी हुई और सतगुरु पूरे न मिले तो अधूरे गुरू के साथ में जाती रहेगी। फिर जो गुरू उसको पूरा भी मिले तो उसकी चाह नहीं रहती—और जिसको बिरह और प्रेम नहीं है और वह सतगुरु पूरे की सरन में आगया तो सतगुरु दयाल अपनी दया

से उसकी बिरह और प्रेम बढ़ाकर काम पूरा कर देंगे और जो अधूरे गुरु से मिला तो वह अपनी बिरह के अहंकार में रहेगा और काम भी पूरा नहीं बनेगा। सब तरह से मुख्यता सतगुरु पूरे की है—इससे जानना चाहिये कि बिना उनके मिलने के किसी का कारज पूरा नहीं हो सक्ता॥

१८४—सतगुरु की सरन का दर्जा बहुत ऊँचा और कठिन है और वैसे तो हर कोई कहता है कि हमने सरन लेली। पूरे सरनवालों की यह हालत है कि उनको सिवाय सतगुरु के और कोई बिशेष प्यारा नहीं लगता है। जिसकी यह हालत है उसका कहना सब दुरुस्त है। पहिले जो सन्त हुए उन्होंने जब तक जीव ने तन मन धन नहीं भेट किया उद्धार नहीं किया। पर अब राधास्वामी दयाल जीवों को दुखी और बलहीन देखकर थोड़ी दीनता

और प्रीत पर उद्धार अपनी तरफ़ से दया करके फ़रमाते हैं। इस वास्ते जिसको पूरे सतगुरु के दर्शन और सेवा और सतसंग और शब्द का अभ्यास प्राप्त है वही जीव बड़ भागी है:—

सुत दारा और लक्ष्मी, सब काहू के होय।
सतगुरु सेवा साध सँग, कलि मैं दुर्लभ दोय॥

१८५—राम जो कर्ता तीन लोक का है और उनका पालन और पोषन और संहार कर रहा है। सो जीव का मुद्दई है—क्योंकि उसने असली रूप से जुदा करके जीव को गर्भ बास दिया और फिर अनेक प्रकार के दुश्मन अन्तर और बाहर जीव के संग लगा दिये—याने अन्तर में तो काम क्रोध लोभ मोह अहंकार और बाहर माता पिता सुत स्त्री मित्र धन धाम और भोगों में फँसा दिया—इसलिये ऐसे दुखदाई को क्या माने—इस वास्ते

सतगुरु को मानना चाहिये कि जिनके प्रताप से ऐसे मुद्दई के जाल से निकल कर सदा सुख का स्थान प्राप्त होवे और कोई बचाने वाला काल के जाल से इस संसार में नहीं है ॥

१८६—सन्त सतगुरु ने जिस नाम का निर्णय किया है वह वेद शास्त्र में नहीं है। और सन्त सतगुरु वही हैं जिनके पास वह पूरा नाम है और यों तो बहुतेरे भेषधारी अपने तईं साध और सन्त कहते हैं--पर वह साध और सन्त हो नहीं सकते सच्चे और पूरे सन्तों के प्रताप से रोटी खाते हैं। पर सन्तों का पद वही पा-वेगा जो उनका प्यारा होवेगा और प्यारा वही होगा जो उनके चरनों में प्रीत और प्रतीत करेगा और प्रीत और प्रतीत उन की मेहर और सेवा और सतसंग से आवेगी और त्रिलोकीनाथ का नाम

और पद भी संतों की दया और उनकी जुक्ती की कमाई से मिलेगा और किसी तरह इस कलियुग में नहीं मिलेगा ॥

१८७—जिसको सतगुरु के चरनों में प्रीत है उसको सिवाय महिमा सतगुरु के और कोई बात नहीं सुहाती है—और जिसको सतगुरु का निश्चय है वह सतगुरु में कोई औगुन नहीं देखता है—और जो औगुन दृष्टि आई तो सतगुरु भाव जाता रहा । इस वास्ते सतगुरु की निस्बत कभी औगुन दृष्टि लाना नहीं चाहिये और जिसकी ऐसी दशा है वही गुरुमुख होगा और उसी को एक दिन परम पद मिलेगा ॥

१८८—ईश्वर को सर्वत्र आकाश और पाताल में ब्यापक बताते हैं पर किसी को मिलता नहीं । फिर उसके सर्ब ब्यापक होने से जीव को क्या फ़ायदा

क्योंकि वह रूप किसी को प्राप्त नहीं होता—और जब मालिक ने सतगुरु रूप धारण किया तो इस रूप से जीवों को दर्शन भी देता है और भेद समझा कर अपनी दया के साथ जुक्ती की कमाई कराकर निज घर में पहुँचाता है और अपने निज रूप का दर्शन देता है। अब ग़ौर करना चाहिये कि सतगुरु रूप बड़ा है कि व्यापक रूप इससे किसी का कारज नहीं बनता और सतगुरु रूप से जिस वक़्त कि जीव को सतसंग और सेवा करके उस पर निश्चय आगया तो सहज में कारज बनता है। बिना मिलाप सतगुरु वक़्त के किसी को मालिक का पूरा निश्चय नहीं हो सकता है और जब पूरा निश्चय नहीं हुआ तो पूरी प्रीत और प्रतीत भी नहीं आई और जब प्रीत और प्रतीत नहीं तो उद्धार कैसे होगा--फिर

जो कुछ करतूत परमार्थी बनेगी वह कर्म का फल चौरासी जोनि में देगी--पर सच्चे मालिक की भक्ती कभी नहीं आवेगी जब तक सतगुरु वक़्त के न मिलेंगे और उनके बचन पर निश्चय न आवेगा ॥

१८८--साध ब्राह्मण छत्री आज कल अहंकारी हो गये हैं--न साध में साधता और न ब्राह्मण में ब्राह्मणता और न क्षत्री में राज और बल रहा है ख़ाली अहंकार करते हैं--पर वैश्य और शूद्र अभी कुछ अपनी चाल पर हैं सन्त फ़रमाते हैं कि साध संग करो, पर जब साध दुर्लभ हुए तो कहाँ से संग प्राप्त होवे और बिना सन्त और साधसंग उबार नहीं है--सो अब समझना चाहिये कि बिना संस्कार संत या साध नहीं मिलेंगे। जिसका भाग ज़बर है उसको ज़रूर संत सतगुरु अथवा साध मिलेंगे और जो कोई यह कहे

कि संस्कारी को साध संग की क्या ज़रूर है सो ग़लत है चाहे संस्कारी होवे या असंस्कारी दोनों को साध संग की ज़रूरत है--पर इतना फ़र्क़ होगा कि संस्कारी को बचन जल्दी असर करेगा और वह उसको सहज में मान सकेगा और असंस्कारी से बचन कम माना जावेगा और कम बर्ता जावेगा पर उसके बीजा पड़ेगा और आगे उस से कमाई बनेगी--और संस्कारी उसको कहते हैं कि जो पिछले जन्म से संत सतगुरु अथवा साध से मिलता और उन पर भाव और निश्चय लाता चला आता है और जिसका भाग उनकी दया से सहज सहज बढ़ता चलाजाता है--और संत सतगुरु की दया से असंस्कारी भी संस्कारी हो सकता है और संत सतगुरु की तो ऐसी महिमा है कि जो उनका दर्शन करे उसका किसी क़दर उद्धार

होता है और चौरासी से बच जाता है और बहुतेरे दुःख व क्लेशों से रक्षा हो जाती है और आगे को रास्ता उद्धार का उनकी कृपा से जारी हो जाता है इस वास्ते कुल जीवों को चाहिये कि अपने फ़ायदे और सुख के लिये जहाँ कहीं संत सतगुरु प्रगट होवें ज़रूर जिस क़दर बन सके उनके दर्शन और सेवा से अपना भाग बढ़ावें॥

१९०—नरदेही उसी की सुफल है जिस को सतगुरु वक्त की सेवा प्राप्त है और सेवा में इतना भेद समझना चाहिये कि दर्शनों के वास्ते चलने से पाँव पवित्र होते हैं और दर्शन से आँखें पवित्र होती हैं और हाथों की सेवा से जैसे चरन दाबने और पंखा करने से हाथ पवित्र होते हैं और जल भरने की सेवा से कुल देह पवित्र होती है और चित्त से बचन श्रवन करने

और बिचारने और जिस क़दर बन सके मानने से अन्तःकरण पवित्र होता है। इसी तरह जब सेवा में जीव लगा फिर सतगुरु की दया और उनके सतसंग का फल अपने आप देखता चला जावेगा और जो कुछ कि आनन्द और दर्जा उसे प्राप्त होगा उसकी महिमा बयान में नहीं आती है॥

१८१—आज कल गृहस्थी और भेष जब अपने स्थान से चलते हैं तो तीर्थ का भाव करके निकलते हैं और सतसंग जो सब का सार है उसकी किसी को तलाश नहीं है और न उसका कुछ भाव है और जिसको कि वह लोग सतसंग समझते हैं वह असल में सतसंग नहीं है सतसंग सतगुरु के संग का नाम है और जहाँ क़िस्से कहानी लड़ाई झगड़ा और विद्या की बातें होवें उसका नाम सतसंग नहीं है। सतगुरु रूप आप सत्यपुरुष का है इसलिये उन्हीं के

संग का लाभ सतसंग है और बाक़ी सब झगड़े हैं—इन से कभी जीव का उद्धार नहीं होगा ॥

१८२—जो लोग कि राम और ब्रह्म को सर्ब ब्यापक समझकर टेक बाँध रहे हैं और उसका इष्ट रखते हैं उनको समझना चाहिये कि ऐसी टेक से जीव का कारज हरगिज़ नहीं होगा क्योंकि ब्यापक रूप राम अथवा ब्रह्म दीपक के समान है सब को चाँदना दिखा रहा है उसी चाँदने में चोर चोरी करता है शराबी शराब पीता है बिषयी बिषय भोगता है परमार्थी परमार्थ कमाता है पर वह किसी से कुछ नहीं कहता है--फिर ऐसे नाम के जपने या इष्ट बाँधने से चौरासी नहीं छूटेगी और मन अपने नाच नचाता रहेगा और जिनको कि सतगुरु रूप मालिक की टेक है और उनका सतसंग प्राप्त है तो बिषयी बिषय भोग छोड़ देगा और चोर चोरी

से हट जावेगा और जो खोटे काम हैं उन से दिन बदिन बचता हुआ निर्मल हो जायगा और एक दिन अपने निज पद और निज रूप को पा जावेगा और राम ब्रह्म या कोई और नाम या इष्ट जपते जपते उमर गुज़र जायगी पर बिकार दूर न होंगे और न भोगों की आशा और तृष्णा की जड़ काटी जावेगी फिर कैसे उद्धार हो सकता है ॥

१८३—जो कोई यह ख़याल करते हैं कि हमने तो सब त्याग दिया या पोथियाँ पढ़ पढ़ और बिचार करके सब छोड़ दिया यह बड़ी भूल और धोखा है--उनको अपने मन और इन्द्रियों की परख नहीं आई--जब भोग नाना प्रकार के सन्मुख आवें या कोई मान और आदर करे या कोई धनवान या राजधारी बात पूछे तब देखना चाहिये कि मन कैसा मगन हो

कर उनकी तरफ़ मुतवज्जह होता है और जब निरादर होवे या मतलब की बात हासिल न होवे तब कैसा दुखी होता है और क्रोध में भर आता है--इस से मालूम हुआ कि इच्छा मान और बड़ाई और चाह सैर और तमाशे और नामवरी की अभी बहुत ज़बर अंतर में धसी हुई है। जो कोई इन बातों को याने ज़ाहिरी त्याग और बैराग और बिचार वग़ैरह में लगे रहने और ज्ञान के ग्रन्थों के पढ़ने को परमार्थ समझता है यह भी भूल है क्योंकि इन बातों से मन नहीं मरता है--मन के मारने की जुक्ति यह है कि पूरे सतगुरु या पूरे साध की सेवा और उनका सतसंग और रूखा सूखा टुकड़ा खाकर उनकी जुगत याने सुरत शब्द मारग के अभ्यास में मन को जोड़ना और जब इन बातों का ज़िकर भी नहीं तो मन कैसे

बस आवेगा और परमार्थ कैसे बनेगा—और जब हाल यह है कि ज़बान से तो कहते हैं कि इस लोक और परलोक के विषय भोग कागबिष्टा के समान हैं और मन में चाह और तलाश उन्हीं भोगों की धरी हुई है तो फिर उनको क्या फ़ायदा होगा—अफ़सोस है कि वह ऐसे ग़ाफ़िल हैं कि उनको यह भी तमीज़ नहीं होता कि हम कहते क्या हैं और करते क्या हैं—पर संसार उन से भी ज़ियादा ग़ाफ़िल है कि उन्हीं को परमार्थी जानता है और डूबे हुओं के पीछे लग कर डूबता चला जाता है॥

१९४—बाज़े विद्यावान ऐसा कहते हैं कि भोगों की चाह और काम क्रोध आदिक मन और इन्द्रियों के स्वभाव हैं और जीव का स्वरूप इन से न्यारा है और जो उस को बिचार करके समझ लिया तो यह उसका कुछ बिगाड़ नहीं कर सकते। अब

समझना चाहिये कि यह बड़ा धोखा है कि जब भोग और बिलास की चाह और मन इन्द्रियों के बिकार उनके स्वभाव हुए फिर संसारी जीव और ज्ञानी में क्या भेद हुआ जैसे वह इनके फल चौरासी में भोगेंगे ये भी ऐसे ही भोगेंगे—क्योंकि भोगते वक़्त दोनों एक से आसक्त होकर अपने आपे को भूल जाते हैं याने देखने में आता है कि जब ऐसे साहिबों का कोई निरादर करे या तान मारे या इल्ज़ाम लगावे या जब वे दूसरे की मान प्रतिष्ठा होती हुई देखें तो उसी वक़्त उनको क्रोध और ईर्षा सताती है और जब आसा किसी भोग की पूरी न होवे तो दुखी होते हैं और अनेक जतन उसके पूरे होने के लिये करते हैं और हर एक से मदद चाहते हैं और सवाल करते हैं। अब ग़ौर करना चाहिये कि यह क्या हालत है

भोग तो कागविष्टा के समान हुए और वे भी उनके भोगने के लिये महा नीच सीढ़ी पर उतर बैठे कि जहाँ से चौरासी का रास्ता खुला है—इस वास्ते यह बात दया करके कहा जाती है कि जिस किसी को अपने जीव का उद्धार मंज़ूर है उसको मुनासिब है कि विद्याज्ञानी के संग से बच कर जैसे बने सतगुरु का खोज करके उनके चरनोँ का आसरा लेवे तो कारज होगा और किसी इष्ट से या पंडित या भेष के संग से चौरासी से नहीँ बचैंगे। भेष और पंडित को खिलाना पिलाना और जो बने सो देना मुनासिब है, पर तन मन सतगुरु के चरनोँ में अर्पना ज़रूर है-- यह बात उसी के लिये है और उसी से मानी जावेगी जिसको मालिक से मिलने की चाह है और अपने जीव का उद्धार मंज़ूर है—भेष और पंडित और संसारियोँ को यह बचन प्यारे नहीँ लगैंगे॥

१९५—विद्यावान और चतुरा सतगुरु के संग के लायक़ नहीं हैं--क्योंकि ये अहं-कारी होते हैं और इनको सन्त सतगुरु पर भाव नहीं आता। संत देखी हुई कहते हैं और यह नादान सुनी हुई बकते हैं और अपनी अक़ल के ज़ोर से बिधी मिलाना चाहते हैं—और जो जुक्ती कि उन को बताई जावे उस में इनका मन जो कि सैलानी और अहंकारी और भोगों की चाहवाला है नहीं लगता और करामात की चाह रखते हैं और करामात दिखाने की सन्तों की मौज नहीं है—क्योंकि जो प्रीत करामात के ज़ोर से होवेगी उसका कुछ भरोसा नहीं है--करामात उनके वास्ते है कि जिनको परमार्थ की सच्ची चाह है और अपने जीव के कल्यान के वास्ते संतों पर भाव और प्रतीत लाये हैं—ऐसे शख़्स

हमेशाकरामातदेखतेहैं--और जिनलोगों को असली चाह संसार की बड़ाई और भोगों की प्राप्ती की है और परमार्थ की सच्ची चाह नहीं है वे क़ाबिल करामात दिखाने और सतसंग में लगाने के नहीं हैं--इस वास्ते जो जीव कि परमार्थी हैं उनको चाहिये कि ऐसे लोगों के संग से होशियार रहैं ॥

१८६--संत अगर जाहिर में क्रोध और लोभ भी करें तो उसमें जीव का उपकार है और संसारियों का क्रोध और लोभ चौरासी लेजानेवाला है--पर इस बारीकी को मूर्ख नहीं समझते--यह बात भी सतसंगी जानते हैं--मूर्ख निन्दा करते हैं पर संत दयाल हैं अपनी दया से उनका भी उद्धार करते हैं ॥

१८७--संसारी जीव मरने से डरते हैं क्योंकि वह संसार और उसके पदार्थों में

आशक्त हैं और जो साध है वह मरने से नहीं डरता—क्योंकि वह संसार और उसके पदार्थों को दुख रूप देखता है और उसको अपना घर नहीं जानता मुसाफ़िरों के तौर से रहता है और पूरन परमानन्द स्वरूप जो सतगुरु का है उसका आनन्द लेने को चाहता है--इस सबब से मरने का दुख उसको नहीं होता बल्कि साध जीते जी मर लेते हैं और सतगुरु के निज स्वरूप के आनन्द में मगन रहते हैं॥

१९८—सन्तों के दरबार में कोई क़ायदा ख़ास सेवा भजन और सतसंग का मुक़र्रर नहीं है और न सन्त किसी पर ज़बरदस्ती करते हैं सिर्फ़ बचन सुनाकर दुरुस्ती करते हैं। जो उत्तम जीव हैं वह जल्द मानते हैं और समझ जाते हैं और जो मध्यम हैं वह आहिस्ता आहिस्ता मानते हैं और जो नहीं समझते और नहीं मानते वह सतसंग

मैं ठहर नहीं सकते--पर सतसंगियों को मुनासिब है कि किसी से ईर्षा न करें और न यह इरादा करें कि या तो हमारे अनुसार हर कोई बरते और नहीं तो चला जावे क्योंकि चले जाने में उसका नुक़सान है और सतसंगी का कुछ फ़ायदा नहीं और जो वह सतसंग में पड़ा रहा तो एक रोज़ समझते समझते समझ जावेगा और फिर सब के अनुसार बरतने भी लगेगा ॥

१८८--भक्तिवान पुत्री बेहतर है साकित पुत्र से क्योंकि भक्तिवान स्त्री दोनों कुलों का उद्धार करेगी और साकित पुत्र दोनों का अकाज करेगा इस वास्ते बड़भागी वही कुल है कि जिस में पुत्र या पुत्री भक्तिवान पैदा होवे। जिस कुल में एक भक्त पैदा होवे उसके अष्ट कुलों का उद्धार होता है और

साकित चाहे जितने होवैं वह नरक में लेजावैंगे ॥

२००—जब कि जीव सतगुरु के स्थूल स्वरूप को जो कि उन्हों ने वास्ते उद्धार जीवों के धारन किया है नहीं पहिचान सकता है तो सूक्ष्म रूप को कैसे पहिचानेगा—सो सिवाय गुरुमुख के और किसी को पूरी पहिचान नहीं आवेगी—जैसे पारस के संग जब लोहा मिलता है सोना हो जाता है पर और कोई धातु सोना नहीं हो सकती—और जीवों का यह हाल है कि गुरुमुख होना तो चाहते हैं पर गुरुभक्ती जैसी कि चाहिये नहीं करते—इस वास्ते चाहिये कि सतगुरु वक़्त की भली प्रकार भक्ती करैं तो आहिस्ता आहिस्ता गुरुमुख बन जावैंगे। कोई मूर्ख जीव यह कहते हैं कि सतगुरु पूरे हम जब जानैं जब किसी को सतगुरु बनाया होय—अब ख़याल करो कि जो किसी को सतगुरु बनाया भी होगा

तो उनको उससे क्या हासिल होगा—जो वह आप सतगुरु बना चाहैं तो सतगुरु भक्ती करैं तब आप देख लैंगे--सो भक्ती तो बनती नहीं है बृथा नरदेही गँवाते हैं--पर इस में भी मौज है क्योंकि जो सब गुरुमुख हो जावैं तो संसार की रचना कैसे रहे ॥

२०१—भेष और ब्राह्मण का संसार में आदर है—पर इनको बड़ा वही जानते हैं जो परमार्थ की चाह नहीं रखते--क्योंकि वह जुक्ती जिस से जीव अपने निज स्थान को पावे इनके पास नहीं है। उन्होंने तो भेष और बिद्या केवल स्वार्थ के लिये हासिल की है--जो जीव कि दर्दी परमार्थ का है उसके चित्त में इन दोनों का आदर नहीं रहेगा चाहे बाहर से वह इनकी ख़ातिरदारी करदे और धन भी दे दे पर मन उनको नहीं दे

सकता--इस वास्ते पंडित और भेष को चाहिये कि ऐसे लोगों के याने सच्चे परमार्थियों के सतसंग में न जावें और जो जावें तो कपट न करें क्योंकि उनके रूबरू पाखंड और कपट की बातें पेश नहीं जावेंगी। वहाँ सचौटी से बरतना चाहिये तो कुछ हासिल भी होगा नहीं तो अपना निरादर करावेंगे और जहाँ कि संत आप प्रगट हैं और उनका दरबार लगता है वहाँ जाकर झूठी और कपट की बातें बनानी अपनी कुगत करानी है। क्योंकि सन्त तो समर्थ हैं वह बरदाश्त कर लेते हैं—पर उनके जो सतसंगी हैं उनसे बरदाश्त नहीं होती है, वह उनकी कपट को खोल देते हैं—क्योंकि उस सतसंग में रात दिन सच्चे की छाँट होती रहती है, वहाँ कपटी और पाखंडी का कैसे गुज़ारा हो सकता है ॥

२०२–ईश्वर के दरबार के दरबानी ब्रह्मा बिष्णु और महादेव हैं और सन्त सतगुर के दरबार के दरबानी उनके सेवक हैं और इनका दर्जा इतना ऊँचा है कि ब्रह्मा बिष्णु और महादेव और ख़ुद ईश्वर जो उनका मालिक है सन्तों के सेवक को रोक नहीं सकते और न उस का मुक़ाबला कर सकते हैं क्योंकि सन्त सब से बड़े हैं और इस वास्ते उनके सेवकों को भी वह दर्जा मिलता है कि जिसकी बराबरी ईश्वर और देवता नहीं कर सकते॥

२०३–सन्त के बचन का अर्थ सन्त ही खूब कर सकते हैं और किसी को ताक़त नहीं है कि उनकी बानी का अर्थ कर सके। जो कोई करेगा वह अपनी बुद्धि अनु-सार करेगा और बुद्धि की उस में गम नहीं है, क्योंकि सन्तों की बानी अनुभवी

है और उसके अर्थ भी अनुभवी हैं-विद्यावान की ताक़त नहीं कि उसको ज्यों का त्यों समझ सके ॥

२०४-जो नाम में शक्ती होती तो हज़ारों जप रहे हैं किसी को तो असर होता-इस से मालूम हुआ कि नाम में शक्ती नहीं है-शक्ती सतगुरु में है। बड़-भागी वह जीव हैं जो सतगुरु को सेव रहे हैं-जो गुनहगार भी हैं और सतगुरु को पकड़ लिया है तो वह माफ़ हो जावेंगे और जो बेगुनाह हैं और सतगुरु को नहीं पकड़ा है तो वह बढ़के गुनह-गारों में गिने जावेंगे ॥

२०५-बाज़े मानी और अहंकारी लोग जो सतसंग में आते हैं उनको सतसंग का रस नहीं आता है क्योंकि वह दोष दृष्टि लेकर आते हैं और जो समझाओ तो कुछ नहीं समझते-और ज़ाहिर में

ग्रन्थ का तो बहुत भाव करते हैं पर बचन एक भी नहीं मानते—और जो लोग बचन मानते हैं और जितना हो सके उसकी कमाई भी करते हैं और सतगुरु को मुख्य रखते हैं उनको वे ओछा समझते हैं—ऐसे अहंकारियों को सन्तों से कभी कुछ फ़ायदा न होगा—वह ग्रन्थ के टेकी हैं—और जो ग्रन्थ में हुकम है कि सतगुरु का खोज करो उनकी सेवा से कुछ फ़ायदा प्राप्त होगा उसको नहीं मानते हैं—ग्रन्थ ही को गुरू मानते हैं--यह लोग बरखिलाफ़ गुरू नानक के बचन के अमल करते हैं क्योंकि ग्रन्थ गुरू नहीं हो सकता वह तो जड़ है खुद बोलता नहीं है और न उपदेश कर सकता है--यह काम सतगुरु ही का है--अगर ग्रन्थ उपदेश कर सकता तो निर्मले और उदासी काशी में जाकर पंडितों के किंकर

न होते और ग्रन्थ को वेद शास्त्र से कम न समझते और तीर्थ और ब्रत में न भरमते और अपने चेलौं को यह उपदेश न करते कि बाद उनके मरने के उनकी गया करो । ग्रन्थ में वह भेद है जो कि वेद के कर्ता ब्रह्मा को भी मालूम न हुआ--पर सिवाय सतगुरु पूरे के दूसरा कोई उस भेद को बयान नहीं कर सकता--इस वास्ते सब को चाहिये कि मुख्यता सतगुरु की करैं--वह ग्रन्थ का भेद भी कह सकते हैं और बिना ग्रन्थ भी उद्धार कर सकते हैं और जो लोग सतगुरु वक़्त का खोज नहीं करते वह चौरासी में भरमैंगे ॥

२०६--बाचक ज्ञानी की मुक्ती नहीं वे सिर्फ़ बातैं बनाते हैं और जो सच्चे ज्ञानी हैं उनके स्थूल कर्म कटते हैं पर सूक्ष्म नहीं दूर होते हैं वह बग़ैर संतौं के पद

में पहुँचने के नहीं कट सकते हैं--और मालूम होवे कि इस जुग में मुक्ती भी संतों के द्वारा हो सकती है क्योंकि बग़ैर स्थूल और सूक्ष्म कर्म कटे हुए मुक्ती कैसे होगी और कर्म काटने की जुक्ती ज्ञानियों के पास नहीं है ॥

२०७--गुरुमुख उसका नाम है जो सतगुरु को मालिक कुल समझे और उनकी किसी करतूत पर तर्क न करे और अभाव न लावे। जैसे किसी के घर में मौत हो गई या कोई दुख आकर पड़ा या नुक़सान हो गया या गर्मी ज़ियादा हुई या सर्दी ज़ियादा हुई या बारिश ज़ियादा हुई या बिल्कुल न हुई या बीमारी या मरी या और कोई मुश्किल पड़ी तो उस वक़्त ऐसा न कहे कि ऐसा मुनासिब न था या यह बेजा या बुरा हुआ बल्कि यह समझना चाहिये कि जो हुआ सो मौज से

हुआ और ऐसा ही मुनासिब होगा और इसी में मसलहत होगी सो यह बात किसी पूरे गुरुमुख से बन आवेगी और किसी की ताक़त नहीं है।

२०८—राम सब के घट में ब्यापक है पर कोई उसको नहीं पहिचानता और उसके देखते जीव औगुन करते हैं और वह मने नहीं करता और चौरासी भुगवाता है फिर ऐसे राम से क्या मतलब निकलेगा—जब सतगुरु मिलें और उसका पता बतावें कि इस स्वरूप से राम तुम्हारे घट में ब्यापक है तब इस जीव को ख़बर पड़े और बुरे कामों और चौरासी से बचे। इस वास्ते खोज सतगुरु का ज़रूर है क्योंकि वह प्रगट राम हैं और जो गुप्त राम है उसका खोज बिना सतगुरु के नहीं हो सकता और जो ऐसा नहीं करते उनको न राम मिलेगा न चौरासी छूटेगी और दुर्लभ नरदेही

मुक्त बरबाद होगी और जो सतगुरु का खोज सच्चा होकर करेगा तो वे ज़रूर ही मिलेंगे क्योंकि सतगुरु नित्य औतार हैं और हमेशा संसार में मौजूद रहते हैं॥

२०९—अन्तर में जो शब्द होता है उसका सुनना यह शब्द भक्ती है और जिस घट में शब्द प्रगट है उनसे प्रीत करना और सेवा करना यह सतगुरु सेवा है और वही सतगुरु हैं और शब्द उनका निज स्वरूप है। उनके बचनों का मानना और उसपर अमल करना यह बाहरमुख भक्ती सतगुरु की है और अन्तर में शब्द का सुनना अन्तरमुख भक्ती सतगुरु की है—मगर पहिली सीढ़ी यह है कि जिस स्वरूप से सतगुरु उपदेश करते हैं उससे प्रीत होनी चाहिये तब सतगुरु के शब्द स्वरूप से प्रीत होगी और जिसको देह स्वरूप सतगुरु से प्रीत नहीं है उसको शब्द स्वरूप में भी प्रीत

नहीं होगी और चाहे जितनी मिहनत करे उसको शब्द नहीं खुलेगा और जिसको सतगुरु के देह स्वरूप से प्रीत है पर शब्द में ऐसी प्रीत नहीं है उसका उद्धार सतगुरु अपनी दया से करेंगे पर जिनको सतगुरु से प्रीत है उनको शब्द में भी प्रीत ज़रूर होगी—पहिले प्रीत और भक्ती सतगुरु के देह स्वरूप की होनी चाहिये बग़ैर इसके काम नहीं बनेगा ॥

२१०—नारद मुनि जिनको प्रत्यक्ष राम का दर्शन हुआ पर इतनी ताक़त राम की न हुई कि उनको चौरासी से बचा लेवे—इस से तो गुरू ने ही बचाया—फिर आज कल जो लोग राम का नाम जपते हैं कि जिस को कभी आँख से नहीं देखा और पूरे गुरू से मिले नहीं तो यह चौरासी से कैसे बचेंगे, इस वास्ते चाहिये कि अपने वक़्त का सतगुरु खोजें और उनकी सरन लेवें॥

२११—निर्मले ज्ञानियों से पूछना चाहिये कि जो तुम गुरू नानक के घर के हो तो गुरू ने ग्रन्थ रचा है उस पर अमल क्यों नहीं करते और वेद शास्त्र के किंकर क्यों होते हो याने गुरू ने जो भक्ती कही है उसकी कमाई और जैसी दीनता बर्णन की है उसकी धारना क्यों नहीं करते—और जो अपने को ज्ञानी मानते हो यह बड़ी भूल है बग़ैर भक्ती ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ—यह तो पोथियों का ज्ञान है जिस वक़्त माया का चक्कर आवेगा सब उड़ जावेगा—इस वास्ते सतगुर पूरे की भक्ती करो तब सच्चा ज्ञान प्राप्त होगा--और व्यास और बशिष्ठ जो अपने मत में पूरे थे उन पर भी माया ने छापा मारा फिर तुम कैसे बचोगे--माया से केवल सन्त बचे हैं या वह जो उनकी सरन में आया और कोई हरगिज़ नहीं बचेगा--

जो तुम को सन्तौं की प्रीत नहीं है तो काल के जाल में फसे रहोगे और जो नरदेही सुफल करना चाहते हो तो विद्या और बुद्धी का अहंकार छोड़कर सन्त सतगुरू के आगे दीनता करो वह समर्थ हैं माया और काल दोनौं से बचाकर निज स्थान को पहुँचा देंगे—आगे तुम को इख़्तियार है चाहे इस बचन को मानो या न मानो तुम्हारे भले के वास्ते कहा गया है ॥

२१२—कलियुग में बादशाह सन्त हैं जो जीव उनके हुक्म में चलेंगे याने जो कर्म और उपासना सन्तौं ने इस कलियुग के वास्ते कही है उसको करेंगे वह खुश रहेंगे और उनका उद्धार होगा और जो इस हुक्म के बरख़िलाफ़ अमल करेंगे याने पिछले जुगौं के कर्म और उपासना और ज्ञान जो शास्त्र और पुराणौं में लिखा है करेंगे तो उन से वह कर्म बिधि पूर्बक नहीं

बन सकेंगे और उलटा अहंकार बढ़ेगा क्योंकि पुराने जो क़ानून हैं वह सब रद्द और ख़ारिज हुए अब जो कोई उनकी टेक रक्खेगा और उन पर चलेगा उसका काम हरगिज़ नहीं बनेगा और चौरासी से नहीं बचेगा—इसवास्ते सब जीवों को चाहिये कि सन्तों का हुक्म मानें--और सन्तों ने यह कर्म और उपासना मुक़र्रर की है कि सतगुरु का सतसंग और सेवा और दर्शन और उनकी बानी का पाठ और श्रवन और उनके नाम का सुमिरन यह कर्म है—और सतगुरु के स्वरूप में प्रीत और उनका ध्यान और अन्तर में उनके शब्द का सुरत से श्रवन यह उपासना है॥

२१३—ब्राह्मण और क्षत्री ने अपना कर्म और धर्म तो छोड़ दिया पर अहंकार नहीं छोड़ा--पिछले जुगों के जो कर्म

करते हैं वह बिधिपूर्बक नहीं बनते और उनके आचार्यों ने जो कलियुग के वास्ते कर्म कहे हैं वह नहीं करते हैं इस सबब से अभागी रहते हैं और लाचार हैं कि इस वक़्त में परमार्थ जीविका के आधीन है और पिछले वक़्त में परमार्थ के आ-धीन जीविका थी पर अब कलियुग में जो सन्त प्रगट हुए हैं उन्हों ने वह जुक्ती निकाली है कि जो उसकी कमाई करे तो सच्चा ब्राह्मण बन जावे और क्षत्री सच्चा हो जावे पर यह लोग अहं-कार करके सन्तों के बचन की प्रतीत नहीं करते हैं बल्कि निन्दा करते हैं सबब इसका यह है कि यह लोग संसार से निकलना नहीं चाहते क्योंकि नरक का कीड़ा नरक में ख़ुश रहता है इस वास्ते संसारियों को सन्तों का बचन बुरा लगता है और सन्त तो उनके भले की बात बताते हैं॥

२१४—मालिक जीव के पास है और यह मूर्ख जीव उसको बाहर ढूँढ़ता फिरता है याने काशी और प्रयाग वाले अयोध्या और बृन्दाबन और हरद्वार और बद्रीनाथ में और अयोध्या और बृन्दाबन के बासी प्रयाग में भरमते फिरते हैं—यह भरमना सिवाय सतगुरु पूरे के और कोई नहीं छुड़ा सकता है इस वास्ते सतगुरु का खोज करना चाहिये और पंडित और भेष आपही भरम रहे हैं और औरों को भी भरमाते हैं॥

२१५--नरदेही छिनभंगी है इस के जोबन पर क्या ग़रूर करना, जैसे पत-झड़ के मौसिम में दरख़्तों के पत्ते झड़ जाते हैं ऐसे ही यह जोबन भी थोड़े अरसे में जाता रहेगा, इसवास्ते मुनासिब है कि इसको मुफ़्त न खोवे और अपने प्यारे मालिक का पता लगाकर

उसकी सेवा और टहल में लगे—और मालूम होवे कि माता पिता पुत्र और स्त्री और यार दोस्त और बिरादरी और धन इन में कोई सच्चा प्यारा नहीं है बल्कि यह सब दुख के दाता हैं—पर संसारी जीव इनको सुख रूप मानते हैं सो वह अभागी हैं और बड़भागी वही हैं जो सतगुरु पूरे की प्रीत और प्रतीत करते हैं और उनकी सेवा में अपना तन मन धन लगाते हैं—इस जवानी में जिसने सतगुरु का खोज कर लिया वही अक़लमन्द है और जो ग़ाफ़िल रहा उस को पछताना पड़ेगा ॥

२१६—सन्तों का और पंडितों का मेल न हुआ और न हो सक्ता है क्योंकि वह जीवों को बाहर भटकाते हैं और सन्त अन्तर में धसाते हैं पंडित पत्थर पानी में लगाकर जीव को बेधर्म करते

हैं और कोई कोई बर्णात्मक नाम बताते हैं सो उसका भेद नहीं दे सकते और सन्त धुन्यात्मक नाम बताते हैं और उसका भेद स्वरूप लीला और धाम बिधि पूर्बक समझाते हैं, अगर जीव सन्तों का बचन माने तो उसका कारज बन जावे और नहीं तो जन्म जन्म भटकता रहेगा ॥

२१७–धर्म इस जीव का यह है कि पिता की सेवा करना सो पिता इसका सत्तनाम सत्तपुरुष है और यह उसकी अंस है सो इसको मिलता नहीं फिर यह सेवा कैसे करे अब समझना चाहिये कि सन्त सत्तपुरुष का औतार हैं उनकी सेवा करना सत्तपुरुष की सेवा है पिछले तीन जुगों में वे प्रगट नहीं हुए अब कलियुग में केवल जीवों के उबार के लिये औतार धरा है और कुछ मतलब उनका संसार

में आने से नहीं है जो जीव संस्कारी हैं वह दर्शन करते और बचन सुनते ही उनके चरनों में लग जाते हैं और बहुतेरों के संस्कार पड़ जाता है और चौरासी का चक्कर उनका भी रफ़्ता रफ़्ता बच जावेगा क्योंकि सिवाय सन्त के और कोई चौरासी से नहीं बचा सकता और न जीव को उसके निज देश में पहुँचा सकता है॥

२१८--जिनको नाम की प्रतीत नहीं है और बाहर की रहनी अपनी भली प्रकार दुरुस्त रखते हैं और अन्तर में भी कुछ सफ़ाई कर रहे हैं तो चाहे जितना जप तप संजम और अभ्यास करें उन को पूरा फल प्राप्त नहीं होगा और जिन को सतगुरु का बताया हुआ नाम प्राप्त है और उस पर उनका निश्चय पक्का और सच्चा आगया है तो उनको जप

तप संजम का भी फल मिलेगा और पूरन पद को पावैंगे:—

॥ दोहा ॥

नाम लियो जिन सब कियो, जोग जज्ञ आचार।
जप तप संजम परसराम, सभी नाम की लार॥

यह नाम संत सतगुरु से मिलेगा और इससे कुल बिकाराँ की जड़ कट जावेगी और आहिस्ता आहिस्ता मन और इन्द्रियाँ भी बस में आजावैंगी—और वैसे जो कोई इन्द्रियाँ के रोकने का इरादा करे तो बहुत मुश्किल पड़ेगी--जो एक को रोकेगा दूसरी ज़ोर करेगी—और यह हाल पोथियाँ के नाम जपने वालाँ का दिखलाई देता है कि हरचन्द वह जप करते हैं पर बिकार दूर नहीं होते। जो गुरुमुख नाम याने सन्ताँ से नाम लेकर उसकी आराधना करैं तो निश्चय कर आहिस्ता आहिस्ता बिकार दूर हो जावैंगे। सिवाय इस नाम के और कोई जतन

बिकारौं के दूर करने के लिये इस कलि-युग मैं नहीं है ॥

२१९–संतौं के मत मैं बैराग की कुछ महिमा नहीं है सिर्फ़ गुरुभक्ती की महिमा है--जिसकी गुरुभक्ती पूरी है उसके सामने बैराग आदिक साधन बिना साधना हाथ बाँधे खड़े रहते हैं क्यौंकि उसको यह सतगुरु के दरबार से इनाम मैं मिलते हैं–पर सतगुरुभक्ती ऐसी होनी चाहिये कि जैसे चकोर को चन्द्र प्यारा है और हिरन को नाद पतंग को दीपक मछली को जल–जिसकी ऐसी प्रीत है उसी का नाम गुरुभक्त है और उसी की ऐसी महिमा है ॥

२२०–जो नाम ज़रासी अपवित्रता से जाता रहे वह नाम नहीं है। नाम सब से ज़बर है चाहे जैसी अपवित्रता होवे उस को पवित्र कर सकता है और चाहे जिस

जगह बैठ कर लो कुछ हर्ज नहीं है, जो बुरे से बुरा स्थान है वह भी नाम के प्रताप से पवित्र होजावेगा। यह नाम सन्त सतगुरु के पास है और कहीं नहीं है॥

२२१—कलियुग में सिवाय नाम और सतगुरु भक्ती के दूसरे कर्म करने का हुक्म नहीं है और जो कोई बरख़िलाफ़ इसके करेगा याने पिछले जुगों के कर्म में पचेगा वह अहंकारी हो जावेगा और बजाय निर्मल होने के मैला होगा। वेद और शास्त्र भी यही कहते हैं और सन्त भी यही फ़रमाते हैं। वेद के नाम की हद्द तीन लोक तक है और सन्तों का नाम चौथे लोक में पहुँचाता है॥

२२२--जीव को तीन रोग प्रगट और तीन गुप्त लगे हैं--प्रगट औगुनों का उपाय करता है पर गुप्त औगुनों की इसको ख़बर भी नहीं है—उनकी ख़बर सन्त

सतगुरु देते हैं—अगर उनका संग भाग से मिल जावे तो उनकी ख़बर होवे और उनके दूर करने का इरादा भी पैदा होवे। प्रथम रोग जन्म मरन का है और दूसरा झगड़ा और क़ज़िया मन के साथ है जो कि तीन लोक का नाथ है और तीसरा रोग मूर्खता का है कि यह अपने को नहीं जानता है कि मैं कौन हूँ और किस की अंस हूँ और वह कहाँ है। ज़ाहिर है कि कोई बीमारी या झगड़ा किताबों को पढ़कर दूर नहीं हो सकता जब तक कि हकीम और हाकिम वक़्त के रूबरू जाकर हाल अपना न कहे और उससे दवा और फ़ैसला न करावे--फिर सत-गुरु वक़्त के हकीम और हाकिम हैं उनसे यह रोग दूर हो सकता है—और इसी तरह से मूर्खता का रोग पिछलों की टेक बाँधने से नहीं जा सकता वक़्त

के सतगुरू की सरन लेने से जावेगा याने वह आँख दैंगे तब इसको अपनी और अपने मालिक की ख़बर पड़ेगी सिवाय सतगुरू वक़्त के सतसंग के और कोई इलाज नहीं है ॥

२२३–शब्द सूक्ष्म है और जीव का स्वरूप स्थूल होगया है फिर जीव शब्द में एक दम कैसे लगे--स्थूलता के दूर करने का उपाय सतगुरू भक्ती है और जब तक सतगुरू भक्ती दुरुस्ती से न बनेगी तब तक शब्द में लगने का अधिकारी न होगा ॥

२२४–सतगुरू की पहिचान मुश्किल है जिसने सतगुरू को पहिचाना वह निर्भय हो गया क्योंकि जिस किसी की दुनिया के हाकिम से पहिचान हो जाती है वह किसी को ख़्याल में नहीं लाता–और सतगुरू जो कुल के मालिक हैं उनकी

पहिचान जिसको आगई उसको फिर किसका डर रहा सो यह बात किसी बिरले जीव को हासिल होगी और जीवों का तो यह हाल है कि दुनिया के हाकिम के डर से सतगुरु को छोड़ देते हैं तो फिर सतगुरु की पहिचान कहाँ से होवे--असल में जीव की ताक़त नहीं है कि सतगुरु को पहिचान सके--दुनिया के हाकिम अपनी हुकूमत से सबको डराते हैं और सतगुरु अपने को प्रगट नहीं करते हैं बल्कि संसार में जीवों की तरह से बरतते हैं–इस वजह से जिस पर उनकी दया है वही पहिचान सकता है दूसरे की ताक़त नहीं है॥

२२५–सतगुरु के बचन और लीला तो सब को प्यारे लगते हैं पर सतगुरु किसी बिरले को प्यारे लगते हैं। जिनकी प्रीत

वचन और लीला के आसरे हैं उनका भरोसा नहीं हैं पक्की प्रीत उनकी है जिन को सतगुरु से प्रीत है पर वचन और लीला की प्रीतवालों में से सतगुरु की प्रीतवाले निकल आते हैं यह भी सतगुरु से प्रीत लगाने की सीढ़ी है ॥

२२६–एक एक को बड़ा कहता है याने जिससे जिसका स्वार्थ है वह उसी की तारीफ़ करता है पर इस तारीफ़ का एतबार नहीं है–यह ऐसे है जैसे गधे का रेंकना कि शुरू में तो ख़ूब ज़ोर से बोलता है और आहिस्ता आहिस्ता कम हो जाता है जिसका यह हाल है उसकी प्रीत का एतबार याने भरोसा नहीं प्रीत उसी की सच्ची है जो शुरू से अख़ीर तक एकसी रहे ॥

२२७–जब से यह जीव पैदा हुआ है तब से काल इसके संग है गोया यह सुरत

काल के संग बियाही गई है। जब पति दुलहिन के लेने को आता है तब क़ायदा है कि वह रोती है और रोने से मुराद है कि मुझको जाने न देवें पर कोई नहीं रोक सकता है इसी तरह जब काल आवेगा यह सुरत हरचंद रोवेगी पर कोई मदद नहीं दे सकेगा और वह ऐसे रास्ते पर जाकर डालेगा जो बाल से भी बारीक है और चींटी की भी ताक़त नहीं जो उस पर चले और सुरतें उस रास्ते पर जाने में कट कट के नीचे जहाँ नरकों के कुंड भरे हैं गिर गिर पड़ती हैं और जैसी तकलीफ़ होती है उसका बयान नहीं किया जाता है इस से सन्त सतगुरु जीवों को बार बार दया करके समझाते हैं कि बाल से भी बारीक रास्ता है और जो उसका ख़ौफ़ है तो अपनी असलियत के हासिल करने में मिहनत करो और उपाय

उसका सिवाय सतगुरु पूरे के और किसी के पास नहीँ है। जब जीव सतगुरू की सरन लेगा तो वह जो करनी मुनासिब है करा-लेंगे और ऐसे भयानक रास्ते से बचाकर अपनी गोद में बैठाकर निज स्थान में जहाँ सदा आनन्द प्राप्त होगा वहाँ पहुँचा देंगे--सिवाय इसके और कोई उ-पाय नहीँ है ॥

२२८—यह सच्च है कि नाम का प्राप्त होना बहुत मुश्किल है पर नाम के प्राप्तीवालोँ की सरन लेना तो सहज है--और हमेशा से यही चाल चली आई है कि हर एक को नाम नहीँ प्राप्त होता पर सरन लेते चले आये हैं और सरन में बहुत आनन्द है—सन्तोँ के हाथ भी यह जुक्ती नहीँ लगी वह भी आप बन बैठे पर यह जुक्ती जीवोँ के हाथ लगी है ॥

२२९—जो कोई चाहे कि संत सतगुरू की पहिचान कर ले और जो बातें कि

ग्रन्थों में लिखी हैं उनसे बिधि मिलावे तो हरगिज़ नहीं मिलेगो और पहिचान न होगी उसको चाहिये कि कोई दिन उनका संग करे तब पहिचान आवेगी और कोई उपाय पहिचान करने का नहीं है ॥

२३०—जिसने नरदेही पाकर आत्म तत्व को जो इसमें असल याने सार बस्तु है न पाया और संसार के भोगों में इस नरदेही को खोया वह जीव पशू है—मनुष्य स्वरूप हुए तो क्या पर काम पशू का करते हैं—सो यह बात बे सतगुरु पूरे के प्राप्त नहीं होगी--प्रथम तो सतगुरु पूरे का मिलना मुश्किल है और जो मिले तो भाव नहीं आता है क्योंकि आज कल भेषों का यह हाल है कि अपने को पूरन ब्रह्म कहते हैं और जीवों को ज्ञान सिखा-कर भरमाते हैं—और जो उनसे दरियाफ़्त किया जावे कि तुमने ब्रह्म को किस जुक्ती

से पाया तो उसका जवाब नहीं देते हैं इस वास्ते उनका ब्रह्म कहना झूठा है और उनका मार्ग भी जो विद्या और बुद्धि के बिचार का है मन के पेट का है उससे जीव का उबार नहीं होगा। बड़भागी वही जीव हैं जिनको सतगुरु पूरे मिल गये और निश्चय और प्रतीत अपनी बख़्शी है और सेवा में लगाया है क्योंकि जीव की ताक़त नहीं है जो निश्चय ला सके या उनकी सेवा में ठहर सके—यह बात भी उनकी मेहर और दया से हासिल होगी॥

२३१—पिछले पापों का अहंकार रूपी मैल इस जीव पर चढ़ा हुआ है—इस सबब से दुख सुख पाता है—जब सतगुरु वक़्त के सन्मुख आवे तो वे अपने दया रूपी जल से मैल धोकर इस जीव को निर्मल करलें और जो सदा सुख का स्थान है

वहाँ पहुँचा दें पर शर्त यह है कि यह उनके सन्मुख ठहरा रहे और जो एक रोज़ को आया और एक महीना को ग़ैर हाज़िर हो गया तो सतगुरु क्या करें यह बात उसी से बनेगी जिसको दर्द परमार्थ का होगा बे दर्दी का काम नहीं है॥

२३२—नास्तिक जो मालिक के होने से इन्कार करते हैं सो ग़लती में हैं—मालिक इस तरह गुप्त है जैसे काठ में अग्नी पर उनको नज़र न आया इस सबब से नास्तिक हो गये—अगर सतगुरु खोजते और उनसे जुगत लेकर अपने मन को मथकर देखते तो उनको मालिक के दर्शन की दृष्टि हासिल होती और कृतघ्नता याने नाशुक्री के पाप से बच जाते॥

२३३—जैसे मलयागिर का जो दरख़्त है उसके जो दूसरा दरख़्त नज़दीक होता है वह उसको अपने समान ख़ुशबूदार

कर लेता है—इसी तरह से जो जीव साध संग में आये वह भी संसार की तापों से बच कर एक रोज़ साधरूप हो जाते हैं। बड़भागी वही हैं जिनको साध संग प्राप्त है और उन्हीं की नर देही सुफल है और जिनको साध संग प्राप्त नहीं है और न उसकी चाह है वह पशू के समान हैं नर देही मिल गई तो क्या उसका फल तो प्राप्त न हुआ—जैसे सूम की हालत कि हज़ारहा रुपये पैदा करे पर खाये न ख़र्चे तो ऐसे धनवान होने से क्या फ़ायदा हुआ—अन्त को जानैं वह धन किसके हाथ पड़ा और क्या हुआ और जो बासना उसकी दिल में रही तो साँप बन कर बैठा और यह नहीं हो सकता कि बासना न रहे फिर देखो कैसी नीच योनि पाई और चौरासी के चक्कर में पड़ा इसी तरह जिनको नर देही प्राप्त है और उन्हों ने उसको

सन्तौं की प्रीत और सेवा में नहीं लगाया तो अन्त को चौरासी भोगेंगे ॥

२३४—वेद मत वालों का कर्म उपासना और ज्ञान सन्तौं के सिर्फ़ कर्म स्थान तक पहुँचता है क्योंकि सन्तौं का कर्म बग़ैर त्रिकुटी तक पहुँचे पूरा नहीं होता है और सत्तलोक तक उपासना रहती है और अनामी पद में ज्ञान प्राप्त होता है पर सन्त कभी अपने को ज्ञानी नहीं कहते हैं हमेशा भक्ती रखते हैं और यह जो अपने को ज्ञानी कहते हैं वह असल में बाचक हैं क्योंकि वह वक्त सवाल के जवाब नहीं दे सकते हैं कि उनको ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ याने बिना कर्म और उपासना के ज्ञान का होना नहीं हो सक्ता है सो उसका भेद वह बिलकुल नहीं जानते क्योंकि उन्हौंने किया नहीं सिर्फ़ पोथियाँ पढ़ कर ज्ञान के बचन सीखे हैं इस वास्ते झूठे ज्ञानी हैं और जो जीव उनका बचन

मानते हैं वह अपना बिगाड़ करते हैं॥

२३५-सतगुरु वक़्त की हर हालत में मुख्यता है-पहिले उनके चरणों में सच्ची प्रीत करने से सफ़ाई स्थूल की हासिल होगी जब अधिकारी नाम के श्रवन का होगा और फिर नाम का सूक्ष्म रूप और सतगुरु का सूक्ष्म रूप और अपना सूक्ष्म रूप सब एक रूप नज़र आवेंगे-पर यह बात सतगुरु की पूरी प्रीत से हासिल होगी॥

२३६-जिनको अब नर देही मिली है और वह सतगुरु का खोज नहीं करते हैं तो वह चौरासी जावेंगे और फिर नर देही उनको नहीं मिलेगी-इस वास्ते अभी मौक़ा है अपना काम बनाने का-जो यह मौक़ा हाथ से जाता रहा तो फिर मौक़ा नहीं मिलेगा॥

२३७-बाहर की सेवा और टहल अकसर जीव कर सकते हैं इससे सच्चे और

झूठे की परख नहीं हो सकती—असल पहिचान सच्चे की यह है कि जिसको शब्द बताया जावे और उसमें उसकी सुरत लग जावे तो उसी की प्रीत सच्ची समझना चाहिये ॥

२३८--सतगुरु वक़्त से किसी मुक़ाम या सत्तलोक का माँगना नहीं चाहिये--उनसे बारंबार यही प्रार्थना करे कि अपने चरण में रखिये इससे ऊँचा और बड़ा स्थान कोई नहीं है ॥

२३९--संसारी पदार्थों को जो जीव आप भोगते हैं तो अन्त को चौरासी जाने के अधिकारी होते हैं और जो जीव उन्हीं पदार्थों को सन्त सतगुरु और साध के भोग में रक्खें तो परम पद के अधिकारी होते हैं--क्योंकि सन्तों की आशा की न तो उन पदार्थों में है और न अपनी देह में है सिर्फ़ जीवों के उद्धार के वास्ते देह

स्वरूप धरा है पर अपने मुक़ाम की सैर हर रोज़ देखते हैं और जीव पदार्थों और देह में आशक्त हैं पर उनमें से जो उनकी सेवा और टहल में अपना तन मन और धन ख़र्च करेंगे वह चौरासी से बचेंगे और जो अपने खाने पीने और ऐश और आराम में उमर खो रहे हैं वह चौरासी जावेंगे ॥

२४०—जब तक तत्त्व से तत्व नहीं मिलेगा काम पूरा न होगा और जो पाँच तत्व स्थूल हैं इनका कारण सुरत है—और सुरत का कारण शब्द है—इन पाँचों के झगड़े में पड़ने से कुछ फ़ायदा न होगा जो सुरत तत्व है उसको शब्द तत्व में मिलाने से काम पूरा होगा—पर यह बात बे दया सतगुरु पूरे के हासिल न होगी इस वास्ते पहिले सतगुरु का खोज और उनकी प्रीत करना चाहिये ॥

२४१—जैसे पपीहा स्वाँति की बूँद के वास्ते बन बन फिरता है और किसी बूँद को क़बूल नहीं करता है क्योंकि और बूँद से उसकी प्यास नहीं जाती है तो मालिक भी उसकी सच्ची तड़प को देख कर स्वाँति बूँद बरसाता है और उसकी प्यास को बुझाता है इसी तरह जिनको सतगुरु और नाम का खोज सच्चा है और उनकी तलाश में रहते हैं उनको सतगुरु और नाम प्राप्त होंगे, हर एक का काम नहीं है जो इस रास्ते पर क़दम रक्खे॥

२४२—सेवक कहता है कि मेरी यह आर्ज़ू है कि मैं अपने मन को मेंहदी के समान पीसकर सतगुरु के चरनों में लगाऊँ पर सतगुरु अभी क़बूल नहीं करते ख़ैर मैंने तो अपने मन को मेंहदी के तुल्य पीस कर तइयार कर रक्खा है जब उनकी मौज होवे तब चरनों में

लगावैं—यह धर्म सेवक का है कि इतनी मेहनत करके मन को पीस डाला और फिर भी जो सतगुरू ने मंज़ूर नहीं किया तो दीनता नहीं छोड़ी मौज पर रहा—न कि ऐसी हालत होवे कि ज़रासी सेवा करी और जो मंज़ूर न होवे तो अभाव आजावे इसका नाम सेवकाई नहीं है यह तो सतगुरू को सेवक बनाला है—जब यह हालत है तो मन कैसे पीसा जावेगा पर भाग से जो सतगुरू दयाल मिल जावैं तो अपनी कृपा से सब दुरुस्ती सेवक की कर लेंगे॥

२४३—जब दाता किसी को कुछ देता है तब हाथ निकालता है। इसी तरह मालिक जब दया करता है तब मेंह बरसाता है पर इसका फ़ायदा संसार को है—और जब परमार्थियों पर दया करता है तब प्रेम की बर्षा करता है। जिस

किसी में सब गुण हैं और प्रेम नहीं तो वह ख़ाली है और जिस में कोई गुण नहीं पर प्रेम है वही दरबार में दख़ल पावेगा--इस वास्ते मुख्य प्रेम है और यह प्रेम बग़ैर सतगुरु भक्ती के हासिल न होगा ॥

२४४--सन्त जो उस पद को बेअन्त कहते हैं सो यह बात नहीं है कि उनको उसका अन्त नहीं मालूम है या नहीं पाया--इसका मतलब यह है कि वहाँ का जो आनन्द है वह बेअन्त है और सन्त उस मुक़ाम पर जल मछली की तरह से रहते हैं अब जो कोई यह कहे कि मछली ने जल को नहीं लखा या उसका अन्त नहीं पाया यह कहना ग़लत है--और जो ऐसे हैं कि जल में जल रूप होगये उनकी कुछ तारीफ़ नहीं है महिमा उन्हीं की है जो जल में मछली रूप रहकर उसका आनन्द लेते हैं ॥

२४५—काल के ग्रसने से जीव की मोक्ष नहीँ हो सकती क्योँकि सुरत चेतन्य है उसको काल नहीँ खा सकता देही को खाता है—किसी को जल द्वारा किसी को अग्नि द्वारा और किसी को पृथ्वी द्वारा—काल का और जीव का मेल नहीँ है क्योँकि जब से यह दोनोँ सत्तलोक से आये हैँ उन पर ख़ोल चढ़ते चले आये हैँ--काल उलट नहीँ सकता है पर जिस जीव को सतगुरु मिल जावैँ तो उन की दया और सेवा के प्रताप से उसके ख़ोल उतर सकते हैँ और फिर उलट कर सत्तलोक मैँ भी जा सकता है--बिना ख़ोलोँ के उतरे अपने घर मेँ नहीँ पहुँच सकता और ख़ोल बिना शब्द और सतगुरु सेवा और उनकी प्रीत के नहीँ उतरैँगे ॥

२४६—जब तक जीव अलख के पलक के परे न पहुँचेगा तब तक इसको मुक्ति प्राप्त न होगी। अलख नाम मन और काल का है क्योंकि काल जीव को खाता चला जाता है और लखा नहीं जाता। अगर जीव सच्चा दर्दी है तो सब जतन छोड़ कर सतगुरु पूरे की सरन हो जावे तब काम पूरा होगा क्योंकि सन्तों ने इस अलख को लखा है और वही इसको पलक के परे पहुँचा सक्ते हैं। तीन लोक और जितने औतार और देवता हुए हैं अलख के पलक के बाहर नहीं गये और सन्त उसके परे पहुँचे हैं इस वास्ते जो उन की सरन लेगा वह काल की हद्द से बाहर हो जावेगा और जो पिछलों की टेक में रहेगा और वक्त के पूरे सतगुरु पर भाव और निश्चय नहीं लावेगा वह

सन्तों के निज भेद को नहीं पावेगा और काल के जाल से बाहर न होगा ॥

२४७–ऐसा कहा है कि हरि के चरन की सरन लेने से जीव का उद्धार होगा तो अब बिचारो कि जीव उस हरि को कहाँ ढूँढे–उसको तो बिदेह और अरूप कहते हैं और जब चरन सरन कही तो चरन होंगे और जो चरन होंगे तो देह भी होगी तो ऐसा हरि कौन है। सन्त कहते हैं कि इस कहने से मतलब सतगुरु की सरन लेने से है क्योंकि हरि गुरु एक हैं इस वास्ते सतगुरु वक़्त की सरन लेना चाहिये तब वह नाम जिसको पतित उधारन कहते हैं मिलेगा, और उस की कमाई साध संग से होगी याने सब कुसंग छोड़ करके पहिले साध संग करे तब कमाई बन पड़ेगी। और मालूम होवे कि माता पिता सुत स्त्री और संसारी

जीवौं का संग कुसंग में दाख़िल है क्योंकि इनके संग से न सतगुरु की सरन ली जावेगी और न नाम मिलेगा और न साध संग बन सके—पर जो सतगुरु पूरे अपनी मेहर और दया करें तो सब काम बनवा लें ॥

२४८—असल में सन्तौं के मत की रीत और वेद मत की रीत में बिरोध नहीं है पर सिद्धान्त सन्तौं का वेद के सिद्धान्त से बहुत ऊँचा है याने वेद में जो कहा है कि कर्म और उपासना करना चाहिये सोई सन्त भी कहते हैं कि पहिले सतगुरु की सेवा तन मन धन से करना और उनका सतसंग करना यह कर्म है और जो सतगुरु अन्तर में नाम याने शब्द का भेद बतावें उस में सुरत का लगाना उपासना है। वेद में जीव और ईश्वर के तीन तीन स्वरूप लिखे हैं याने विश्व तैजस और

प्राज्ञ यह तीन रूप जीव के और बैराट, हिरण्यगर्भ और अव्याकृत ये तीन रूप ईश्वर के हैं। हाल के ज्ञानी ईश्वर को नहीं मानते—उनकी कहन है कि एक जमाअत का नाम गल्ला है या हज़ार आदमी की फ़ौज को पलटन कहा ऐसे ही ईश्वर को समझते हैं, जब वह अलहिदा २ होगये फिर वह नाम भी जाता रहा—इस हिसाब से ईश्वर कहाँ रहा और जब ईश्वर नहीं ठहरा तो उपासना किसकी करें क्योंकि बिना नाम रूप और लीला और धाम के उपासना नहीं बन सकती है—इस सबब से यह लोग ग़लती में पड़े हैं और इसी सबब से इन का ज्ञान भी बाचक ज्ञान है—बिना कर्म और उपासना के पोथी पढ़ कर और बुद्धि से बिचार करके हासिल किया है—और जो किसी को उपासना करके सच्चा

ज्ञान भी हुआ तो भी वह संतों के कर्म की हद्द में है, निज देश सन्तों का उसके बहुत आगे और ऊँचा है और जो कर्म कि वेद में लिखे हैं वह पिछले जुग के हैं न तो वह जीवों से बिधि पूर्वक अब बन सकते हैं और न उनमें वह फल है-अब जो कोई कर्म करे वह भी सन्तों के द्वारा और जो उपासना करे वह भी सन्तों की दया लेकर तब काम पूरा बनेगा याने वेद के सिद्धान्त और उसके परे पहुँचेगा और तरह से इस वक्त में कुछ काम नहीं बनेगा ॥

२४८—मालिक के दरबार में सिवाय भक्त के और कोई दख़ल नहीं पा सकता है । जितने ऋषि मुनी योगी यती ज्ञानी सन्यासी परमहंस हुए और अपने मत के पूरे भी थे पर उनको मालिक के दरबार में दख़ल नहीं मिला क्योंकि अहं-

कारी थे और निगुरे, उनको सन्त सतगुरु नहीं मिले—और इस वक्त में जो लोग उनके ग्रन्थ पढ़कर अपने को पूरा ख़याल करते हैं और जैसी करनी उन लोगों ने करी उसका चौथा हिस्सा भी नहीं करते और सन्त सतगुरु की निन्दा करते हैं वह कैसे उस दरबार में दख़ल पावेंगे। अब सब को चाहिये कि इस बात को निश्चय कर के मानें कि जो सन्त सतगुरु की भक्ती करते हैं वह कुल मालिक की भक्ती करते हैं क्योंकि पूरे सतगुरु अपने वक्त के में और कुल मालिक में भेद नहीं है दोनों का एक रूप है॥

२५०—जिसको पूरे सतगुरु मिले और वह उनकी सेवा और सतसंग और प्रीत और प्रतीत भी करता है पर इस अरसे में पूरे सतगुरु गुप्त हो गये और इसका काम अभी पूरा नहीं हुआ याने कुछ

अन्तर में नहीं खुला तो जो उसको चाह है कि मेरा काम पूरा होवे तो जो सतगुरु के बनाये हुए सतगुरु मिलें तो उन सें वैसी ही प्रीत और प्रतीत और उन की सेवा और सतसंग करे और सतगुरु पहिले को उन्हीं में मौजूद समझे क्योंकि शब्द स्वरूप करके सन्त सतगुरु और सन्त एक ही हैं दो नहीं हैं और देह स्वरूप कर के दो दिखलाई देते हैं—और पिछलों का अक़ीदा याने मानता इस सबब से बेफ़ायदा है कि उनसे प्रीत नहीं हो सक्ती न तो उनको देखा है न उनका सतसंग किया और जो सतगुरु मिले नहीं तो उनके चरनों में प्रीत नहीं हो सकती—इसवास्ते अनुरागी याने शौक़ीन सेवक को चाहिये कि सतगुरु प्रत्यक्ष से याने अपने वक़्त के से प्रीत करे और उनमें और सतगुरु पहिले में सिवाय देह

स्वरूप के भेद और फ़र्क़ न करे और अपना काम पूरा करवावे और जो उसे चाह अपनी तरक्की की नहीं है तो सतगुरु पहिले की प्रीत और प्रतीत दिल में रक्खे हुए उन्हीं का ध्यान और जो जुक्ति उन्होंने बताई है उसका अभ्यास करे जावे अन्त को वे सतगुरु उसी रूप से उसका कारज जिस क़दर होगा उस क़दर करेंगे पर पूरा कारज नहीं होगा फिर उसको जन्म धारन करना पड़ेगा और फिर सतगुरु मिलेंगे तब उनकी भक्ती और सतसंग करके कारज पूरा होगा। जब सतगुरु वक्त गुप्त होते हैं वह उस वक्त किसी को अपना जानशीन मुक़र्रर करके उसमें ख़ुद आ समाते हैं और बदस्तूर जीवों का कारज करते रहते हैं और जब मौज ऐसी कारवाई की नहीं होती है तब अपने धाम में जा समाते हैं

इस वास्ते सेवक अनुरागी को ऐसे सत-
गुरू में फ़र्क़ न करना चाहिये—मगर जो
सिर्फ़ टेकी सेवक हैं वह सतगुरू दूसरे की
भक्ती में नहीं आवैंगे इस वास्ते उन का
कारज भी जिस क़दर कि सतगुरू पहिले
के रूबरू हो गया होगा उसी क़दर होगा
आगे तरक़्क़ी और दुरुस्ती नहीं होगी ॥

२५१—जिस शख़्स को कि गुरू में ऐसे
गुरू मिले कि जिनको शब्द का भेद मालूम
नहीं है और फिर सतगुरू शब्द भेदी
मिले तो उसको चाहिये कि पहिले गुरू
को छोड़कर सतगुरू की सरन लेवे। क़ौल—

॥ दोहा ॥

झूठे गुरु की टेक को, तजत न कीजे बार ।
द्वार न पावे शब्द का, भटके बारम्बार ॥

बल्कि उस गुरू को भी मुनासिब है कि
अपने चेले के साथ सतगुरू की सरन में
आवे और उनसे अपने जीव का उद्धार
करवावे ॥

२५२–जिसको शब्द भेदी गुरू मिलें पर वे अभी पूरे नहीं हैं अभ्यासी हैं और फिर उसको पूरे सतगुरु शब्द मार्गी मिलें तो उसको चाहिये कि पहिले गुरू को पूरे सतगुरु में दाखिल समझकर सतगुरु की सरन लेवे और उसके गुरू को भी ज़रूर है कि वह भी चेले का संग देवें और सतगुरु की सरन लेवें और जो वे इर्षावान या अहंकारी हैं तो वह सरन में न आवेंगे तो चेले को चाहिये कि उनसे कुछ ग़रज़ और मतलब न रक्खे और आप पूरे सतगुरु की सरन में आवे॥

२५३–जब कि सतगुरु को तुम मालिक कह चुके तो फिर और मालिक कहाँ से आया कि जिसको तुम मानते हो और बड़ा समझते हो तुम्हारे तो एक सतगुरु ही मालिक हैं। देह रखकर जो स्वरूप दिखलाया है पहिले इसी से काम होगा

दूसरा स्वरूप उनका सच्चे मालिक याने सत्तपुरुष राधास्वामी का स्वरूप है और वही तुम्हारे सच्चे बादशाह हैं॥

२५४—ज़िक्र है कि दक्षिण में एक मुक़ाम पर एक फ़क़ीर साहिब जो पूरे गुरू थे बिराजते थे और एक चेला उनका निहायत गुरुमुख था, एक रोज़ सतसंग उनका हो रहा था तब एक मुसलमान मौलवी जो मक्के के जाने के वास्ते तइयार था आया और उसने फ़क़ीर साहिब से कहा कि मक्का और काबा बहुत बुज़ुर्ग और उत्तम जगह है आप के सेवकों को भी वहाँ दर्शन के वास्ते जाना चाहिये और कई तरह से उसकी तारीफ़ और महिमा करने लगा उस वक़्त जो बड़ा चेला फ़क़ीर साहिब के पास बैठा था वह बहुत ख़फ़ा हुआ और उस मौलवी की गर्दन पकड़कर उसका सिर फ़क़ीर साहिब के

चरनौं में रख दिया और कहा कि देख करोड़ौं मक्के और काबे इन चरनौं में मौजूद हैं—जब फ़क़ीर साहिब उठकर वास्ते हाजत के ज़रा बाहर गये तब उस सेवक से और मौलवी से ख़ूब चर्चा हुई जब फ़क़ीर साहिब आये तब मौलवी ने शिकायत की—उसवक़्त गुरू साहिब ने सेवक को समझाया कि नहीं काबा बहुत अच्छा है जैसा कि मौलवी कहता है वैसा ही है और दर्शन करने योग्य है जा तू भी इसी वक़्त मौलवी के साथ जा—वह सेवक पूरा गुरुमुख था हाथ जोड़कर खड़ा होगया और कहा कि जैसे हुक्म गुरू साहिब का उसी वक़्त मौलवी के साथ जहाज़ पर गया—जब कुछ दूर जहाज़ चला तब बड़ा तूफ़ान आया और वह जहाज़ टूट गया और सब लोग जो जहाज़ पर थे डूब गये पर यह सेवक

एक तख़ते पर बैठा रह गया और यह भी थोड़ी देर में डूबने को था कि एक हाथ समुद्र में से निकला और आवाज़ हुई कि जो तू अपना हाथ दे तो तुझे बचा लूँ तब सेवक ने पूछा कि तुम कौन हो आवाज़ आई कि मैं पैग़म्बर साहिब हूँ तब सेवक ने कहा कि मैं नहीं जानता कि पैग़म्बर साहिब कौन हैं मैं सिवाय अपने गुरू साहिब के दूसरे को नहीं जानता हूँ तब वह हाथ छिप गया फिर थोड़ी देर पीछे जब कि यह सेवक तख़ते पर बहा जाता था और ग़ोते भी खाता जाता था दूसरा हाथ निकला और कहा कि हाथ पकड़ ले तुझको बचा लेवें सेवक ने पूछा कि तुम कौन हो आवाज़ आई कि हम ख़ुदा याने ईश्वर हैं इस ने वही जवाब दिया कि मेरा ख़ुदा तो मेरा गुरू है दूसरे ख़ुदा को मैं नहीं

जानता तब वह हाथ भी छिप गया ज़रा देर के पीछे फिर तीसरा हाथ निकला यह हाथ उसके दादा गुरू का था उन्हों ने कहा कि मैं तेरे गुरू का गुरू हूँ मुझे तू अपना हाथ दे मैं तुझको निकाल लूँ तब उस सेवक ने जवाब दिया कि मैं सिवाय अपने गुरू के अपना हाथ किसी को नहीं दे सकता हूँ कोई क्यों न होवे चाहे मैं डूब जाऊँ चाहे ज़िंदा रहूँ मैं सिवाय अपने गुरू के किसी के कहने से नहीं निकलूँगा तब वह हाथ भी गुम हो गया फिर आप गुरू साहिब आये और उन्होंने सेवक को गले लगा लिया और फ़ौरन अपने मकान पर ले आये। अब मालूम करो कि पैग़म्बर साहिब और खुद ईश्वर और गुरू के गुरू ने जो आवाज़ दी थी वह इसके इम्तिहान और परीक्षा के वास्ते थी और जब वह

गुरुमुखता में सच्चा और पूरा उतरा उस वक्त गुरू साहिब आप प्रगट हुए और उसको बचा लिया। अब जीवों को चाहिये कि जहाँ तक बने इसी तरह की मज़बूत और सच्ची प्रीत और प्रतीत सतगुरू की करें॥

२५५–जो पतिब्रता स्त्री है वह सिवाय अपने पति के किसी को मर्द नहीं जानती और सब को नामर्द समझती है याने नपुँसक जानती है बल्कि अपने मा बाप की भी प्रीत भूल जाती है ऐसे ही जो सतगुरू के सेवक हैं उनको भी चाहिये कि सिवाय अपने सतगुरू के और किसी को अपना मालिक और मुक्तिदाता न समझैं और जो पिछले सन्त हुए हैं उन को जब तक मानैं कि जब तक उनको अपने वक्त के पूरे गुरू नहीं मिलैं और जब सतगुरू मिल जावें फिर पतिब्रता की

तरह जो कुछ समझैं उन्हीं को समझैं और दूसरे पर भाव न लावैं ॥

२५६—जो कि बिचौलिया होते हैं वह सगाई और शादी कराकर स्त्री और पुरुष को मिलादेते हैं और उस स्त्री को समझाते हैं कि देख तू सिवाय अपने पति के और किसी से प्रीत मत करियो और हमसे भी इतनी ही प्रीत रख कि जैसे औराँ से बरतती हैं इसी तरह गुरू नानक और पिछले सन्त हुए कि उन्हाँने बिचौलिया का काम किया याने अपने बचन और ग्रंथाँ में लिख गये हैं कि पूरे सतगुरु का खोज करके उनकी सरन पड़ो जिन्हाँने उनके बचन माने और सतगुरु पूरा खोज कर उनकी सरन ली उनको चाहिये कि अब सतगुरु को ही अपना मालिक और पति समझैं ॥

२५७—जीव को चाहिये कि हमेशा सत-गुरु की कृपा और उनकी दया को ख़याल में रक्खे और बिचारे कि सतगुरु ने कैसे चौरासी से बचाया है और करम और भरम काटे याने तीर्थों और बरतों से अलग किया और भटकना से छुड़ाया और शब्द मारग सच्चा दृढ़ाया तब उसकी प्रीत सतगुरु से लगेगी और भरम नहीं उठेंगे—इस वास्ते हमेशा सतगुरु की दया और मेहर को चित्त में रखना ज़रूर है॥

२५८—बिद्यावान गुरू से जीव के संशय दूर नहीं होसकते अलबत्ता सभा बिलास ख़ूब होजाता है। जब एक श्लोक के चार या ज़ियादा अर्थ किये तो जीवों को और संशय में डाला कि वह कौन से अर्थ को पकड़ें—जो बात कि जीव के कल्यान के वास्ते दरकार थी छाँट कर न

कही तो जीव कैसे मुक्ती का रास्ता पावैं और क्या जतन करें इस वास्ते चाहिये कि नेष्ठावान गुरू खोजो जब तक वह नहीं मिलेंगे कारज नहीं होगा और यह सोने के समान जो नरदेही मिली है इस को नमक और आटे के समान पंडित और भेष और बाचक ज्ञानियों के संग में बेक़द्री से ख़र्च न करे और सतगुरु पूरा खोज कर उनकी सेवा और सतसंग करे ॥

२५९—जो लोग कि सत्तनाम और राम और हरनाम का सुमिरन करते हैं और सतगुरु से प्रीत नहीं करते हैं यह करनी उनकी बृथा जावेगी क्योंकि नाम सतगुरु के आधीन है जो सतगुरु को पकड़ेगा उसको नाम और राम भी मिल जावेगा और जो सतगुरु से नाम लेकर सतगुरु की प्रीत न करेगा उसको भी नाम नहीं मिलेगा ॥

२९०—सन्तौं का नाम अगोचर है और वेद का नाम गोचर है जो नाम गोचर है वह सत्य नाम नहीं हो सकता और जब नाम असत्य हुआ तो उसका स्थान और रूप भी असत्य हुआ और सन्तौं का नाम भी सत्य है और रूप व स्थान भी सत्य है क्योंकि जो बर्णात्मक नाम है उसके आसरे सफ़ाई हो सकती है पर सुरत नहीं चढ़ सकती है और धुन्यात्मक नाम के आसरे सुरत पिंड से ब्रह्मांड को चढ़कर अपने निज स्थान याने सत्तलोक में पहुँच सकती है सो वह धुन्यात्मक नाम सिवाय सन्तौं के और किसी से हासिल नहीं हो सकता है जिस के बड़े भाग हैं उसको यह नाम प्राप्त होगा॥

२९१—किसी तरह की जब तकलीफ़ होवे तब हज़ूर सतगुरु को याद करे वे

फ़ौरन सेवक के पास निज रूप से मौजूद हैं—काल और कर्म उस रूप के पास नहीं आ सकते हैं दूर ही दूर से डराते हैं और आप भी डरते हैं—फिर सतगुरु की गोद में किसी तरह का डर नहीं है सतगुरु हर वक्त रक्षक मौजूद हैं और सम्हाल अपने सेवक की करते रहते हैं मौज और मसलहत उनकी सेवक नहीं जान सकता है पर वे ख़ूब जानते हैं और जो मौज होवे तो सेवक को भी जना देवें—शब्द रूप सुरत रूप प्रेम रूप आनन्दरूप हर्षरूप और फिर अरूप हैं॥

२६२—सतगुरु अपनी दया से सदा जीव की सम्हाल करते रहते हैं और चाहते हैं कि सब सेवक उनके चरनों में मुख्य प्रीत और प्रतीत करें पर यह मन नहीं चाहता है कि ऐसी हालत जीव को प्राप्त होवे इस वास्ते वह भोगों की तरफ़

खैंचता है और अपने हुक्म में जीव को चलाना चाहता है इस वास्ते जीवों को चाहिये कि मन की घात से बचकर सतगुरु के चरनों की सम्हाल रक्खें और उसके जाल में न पड़ें। वास्ते परख और सम्हाल के थोड़ा सा हाल गुरुमुख और मनमुख की चाल का लिखा जाता है उससे अपनी हालत की परख करते हुए चलना चाहिये॥

१—गुरुमुख हर एक के साथ सच्चा बरतता है और बुराई की बातों से बचता है और किसी को धोखा नहीं देता है और जो काम करता है सतगुरु के लिये और उनकी दया के भरोसे पर करता है॥

मनमुख चतुराई और कपट से बरतता है और अपने मतलब के लिये औरों को धोखा देता है और अपनी बुद्धी और चतुराई का भरोसा रखता है और अपने आप को प्रगट करना चाहता है॥

२-गुरमुख मन और इन्द्रियों को रोकता है और चित्त से दीन रहता है और ताने के बचन को सहता है और नसीहत को प्यार से सुनता है और अपनी बड़ाई नहीं चाहता है॥

मनमुख मन और इन्द्री का मर्दन पसन्द नहीं करता है और किसी से दबना या उसका हुक्म मानना नहीं चाहता है और दूसरे की बड़ाई की बरदाश्त नहीं रखता है॥

३-गुरमुख किसी पर ज़बरदस्ती नहीं करता और सब की ख़ातिरदारी और सेवा करने को तइयार रहता है और औरों का उपकार करना चाहता है और अपनी पूजा और प्रतिष्ठा की चाह नहीं रखता है और सतगुरु की याद और उनके चरनों में लवलीन रहता है॥

मनमुख औरों पर हुक्म चलाता है और सेवा लेता है और अपना मान चाहता है और बिना कुछ अपने मतलब के औरों से प्रीत नहीं करता और खुशी से अपनी पूजा और प्रतिष्ठा कराता है और चरनों में लवलीन नहीं रहता है ॥

४—गुरुमुख ग़रीबी और दीनता नहीं छोड़ता है और जब कोई उसकी निन्दा करे या निरादर और अपमान करे तो दुखी नहीं होता है बल्कि उसमें अपने लिये भलाई समझता है ॥

मनमुख निन्दा और अपमानसे डरता है और अपना निरादर खुशी से नहीं सहता और बड़ाई चाहता है ॥

५—गुरुमुख सेवा में आलस नहीं करता और कभी ख़ाली बैठना नहीं चाहता॥

मनमुख तन का आराम चाहता है और सेवा में सुस्ती करता है ॥

६–गुरुमुख ग़रीबी और सादगी से रहता है और जो सामान मिल जावे रूखा सूखा मोटा झोटा उसी में ख़ुशी से गुज़ारा करने को तइयार रहता है ॥

मनमुख सदा अच्छे अच्छे पदार्थों को चाहता है और उनको प्यार करता है और रूखे सूखे और ओछे पदार्थों को पसन्द नहीं करता है ॥

७–गुरुमुख संसारी पदार्थों और दुनिया के जाल में नहीं अटकता है और उनकी लाभ और हानि में दुखी सुखी नहीं होता है और जो कोई ओछी बात कहे तो उस पर गुस्सा नहीं करता है और सदा अपने जीव के कल्यान और सतगुरु की प्रसन्नता पर नज़र रखता है ॥

मनमुख संसार और उसके पदार्थों का बड़ा ख़याल रखता है और उनकी हानि लाभ में जल्द दुखी सुखी होता है ॥

और जो कोई कड़ुआ बचन कहे तो फ़ौ-रन गुस्से में भर आता है और सतगुरु की मेहर और समर्थता का भरोसा और ख़याल नहीं रखता है ॥

८—गुरुमुख हर बात में सफ़ाई और सचौटी रखता है और चित्त से उदार रहता है और औरों से सलूक करता है और औरों का फ़ायदा चाहता है और आप थोड़े में सन्तोष करता है और दूसरे से लेने की चाह नहीं रखता है ॥

मनमुख लालची है सदा औरों से लेने को तइयार रहता है और देना नहीं चाहता है और अपना फ़ायदा हर बात में बिचारता है दूसरे का ख़याल नहीं रखता और तृष्णा बढ़ाता है और सफ़ाई से नहीं बरतता है ॥

९—गुरुमुख संसारी जीवों से बहुत प्यार नहीं करता है और भोगों की चाह

और आसा नहीँ रखता है और सैर तमाशे नहीँ चाहता है उसके केवल चरनौँ के प्राप्ती की चाह रहती है और उसी के आनन्द मैँ आशक्त रहता है॥

मनमुख संसारी जीवौँ और पदार्थौँ से प्रीत करता है और भोग बिलास चाहता है और सैर तमाशे मैँ खुश होता है॥

१०—गुरुमुख जो काम करता है सतगुरु की प्रसन्नता के लिये और उनसे दया और मेहर चाहता है और सतगुरु ही की स्तुति करता है और उन्हीँ की बड़ाई चाहता है और संसारी चाह नहीँ रखता॥

मनमुख जो काम करता है उस मैँ कुछ न कुछ अपना मतलब या स्वाद देख लेता है क्यौँकि बिना मतलब के उससे कोई काम नहीँ बन सकता और सदा अपना आदर और स्तुति चाहता है और संसारी चाह उसके ज़बर रहती है॥

११–गुरुमुख किसी से बिरोध नहीं करता बल्कि बिरोधी से भी प्यार करता है और कुल कुटुम्ब ज़ात पाँत और बड़े आदमियों से दोस्ती का अपने मन में अहंकार नहीं लाता और प्रेमी और सच्चे परमार्थी जीवों से ज़ियादा प्यार करता है और सतगुरु के चरनों का प्रेम सदा जगाये रखता है और उनकी दया और मेहर नित्त प्रति बिशेष हासिल करना चाहता है ॥

मनमुख बहुत कुटुम्ब और मित्र चाहता है और धनवान और हुकूमतवालों से ज़ियादा मुहब्बत करता है और उनकी मित्रता और अपनी ज़ात पाँत का अहंकार रखता है और दिखावे के काम बहुत करने को चाहता है और सतगुरु की प्रसन्नता का ख़याल कम रखता है॥

१२-गुरुमुख ग़रीबी और मुफ़लिसी (निरधनता) से नहीं घबराता है और जो तकलीफ़ आपड़े उसको धीरज के साथ सहता है और सतगुरु की दया का भरोसा रखता है और उनका शुकर करता रहता है

मनमुख बहुत जल्द तकलीफ़ से घबराकर पुकारने लगता है और निर्धनता से दुखी होकर इधर उधर शिकायत करता है॥

१३-गुरुमुख सब काम को मौज के हवाले करता है और चाहे भला होवे चाहे बुरा होवे अपना अहंकार उसमें नहीं लाता है और अपनी बात की पक्ष नहीं करता और औरों की बात को ओछी करके नहीं दिखलाता और झगड़े के कामों में नहीं पड़ता और हमेशा सतगुरु

की मौज निहरता रहता है और उनका गुन गाता हुआ चलता है ॥

मनमुख सब कामों में अपना आपा ठानता है और अपने मज़े और नफ़े के लिये झगड़े और रगड़े के काम उठाता रहता है और अपनी बात की पक्ष में क्रोध करने और लड़ने को तइयार हो जाता है ॥

१४–गुरमुख नई नई चीज़ों में और बातों में नहीं अटकता क्योंकि वह देखता है कि उनकी जड़ संसार है और अपने गुन संसार से छिपाये चलता है और अपनी तारीफ़ कराना नहीं चाहता है और जो कोई बात सुने या देखे उस में अपने मतलब का नुकता जो सतगुरु की प्रीत और प्रतीत बढ़ावे छाँट लेता है और सदा सतगुरु की महिमा गाता रहता है जो कि सब गुनों के भंडार हैं॥

मनमुख चाहता है कि नित्त नई नई चीज़ें देखे और नई नई बातें सुने और हर किसी का भेद और गुप्त बात दरियाफ़्त करना चाहता है और इधर उधर से बातें चुनकर अपनी बुद्धी और चतुराई बढ़ाता है यह सब को जता कर अपनी महिमा कराना चाहता है और अपनी स्तुति में बहुत राज़ी होता है॥

१५–गुरमुख जो काम परमार्थी करता है धीरज के साथ करता है और हमेशा सतगुरु की दया और मेहर का भरोसा और उन के चरनों में निश्चय पक्का रखता है॥

मनमुख हर बात में जल्दी करता है और सब काम जल्दी के साथ पूरे करना चाहता है और इस जल्दी में सतगुरु की मेहर का भरोसा और उनके बचन का निश्चय भूल २ जाता है।

यह सब बातें जो गुरुमुख की चाल में बर्णन की गई हैं सो सतगुरु की मेहर से प्राप्त होंगी जिस पर उनकी कृपा होवे उसी को वह बख़्शिश करें और जो उन के चरनों में प्रीत करते हैं और प्रतीत रखते हैं उनको ज़रूर एक दिन यह दात मिलेगी। सतगुरु के चरनों का प्रेम सब गुनों का भंडार है जिसको प्रेम की दात मिली उसमें ये सब गुन आप आजावेंगे और सब मनमुखी अंग छिन में जाते रहेंगे ॥

२९३—इस जुग में वास्ते जीव के कल्यान के सिवाय सतगुरु और शब्द भक्ती के दूसरा मार्ग और उपाय सन्तों ने बर्णन नहीं किया और वेद और पुराण में भी कलियुग के वास्ते यही जतन रक्खा है याने गुरु और नाम की उपासना से जीव का कारज होगा इसमें प्रमाण बहुत

से हैं मूरत पूजा तीर्थ ब्रत जप तप होम यज्ञ आचार और ज़ात बर्ण के कर्म और क्रिया जोग याने हठ जोग और अष्टाँग जोग यह सब पिछले जुगों के धर्म हैं इस जुग में न तो यह बिधिपूर्वक किसी से बन सकते हैं और न इनसे वह फल जिसमें जीव का कल्यान होवे मिल सकता है इस वास्ते इनका बिल्कुल निषेध है जो जीव कि मन की हठ से इन कर्मों को करते हैं उनकी हालत ग़ौर करके देखलो कि पहिले तो उनसे यह कर्म जैसे कि चाहिये बनते ही नहीं हैं और जो कुछ ऊपरी अंग उनके करते नज़र आते हैं सो उस करनी से और अहंकार पैदा होता है और बजाय अन्तःकरण की शुद्धी के इस करनी से और पाप और मलीनता बढ़ती है इस वास्ते मुनासिब है कि जीव धोखे में न पचें और इन कर्मों में अपने

तन मन और धन को वृथा ख़र्च न करें और जो लोग कि इन कर्मों का उपदेश करते हैं ग़ौर करके देखो कि वे या तो रोज़गारी हैं या अहंकारी और अपनी जीविका या मान बड़ाई के निमित्त उपदेश करते हैं जीव के कारज का उनको बिल्कुल ख़याल नहीं है इस वास्ते उनका कहना नहीं मानना चाहिये इस में भी सन्तों के बहुत प्रमाण हैं जिनसे साफ़ ज़ाहिर है कि कलियुग में इन कामों के वास्ते बिल्कुल हुक्म नहीं है और जो कि हुक्म नहीं मानते वह या तो संसारी या रोज़गारी या अहंकारी हैं सो उनके वास्ते यह उपदेश भी नहीं है समझवार और परमार्थी जीव को ज़रा से ग़ौर करने से मालूम होगा कि हक़ीक़त में यह बचन सन्त और महात्माओं का जो कि पिछले कर्म और धर्म के खंडन में है

सच्चा है या नहीं याने मूरत पूजा का मतलब मन और चित्त के एकाग्र करने का था सो अब एक खेल हो गया और कोई भी मूरत का दर्शन घंटे दो घंटे बैठ कर प्रेम प्रतीत से नहीं करता तो वह फल जो कि पिछले महात्माओं ने इस काम में रक्खा था कैसे प्राप्त होगा बरख़िलाफ़ उसके और मन और चित्त की वृत्तियाँ फैलीं और तमाशे में लग गईं तो बजाय फ़ायदे के और नुक़सान हुआ। इसी तरह तीर्थों में पहिले सन्त महात्मा रहते थे और जो जो वहाँ जाते थे वह उनका दर्शन और सतसंग करके अन्तःकरण की शुद्धी हासिल करते थे अब बजाय उसके गंगा जमुना अथवा जल में स्नान करके बाक़ी वक़्त बाज़ारों की सैर और सौग़ात के ख़रीद फ़रोख़्त में जाता है या भंडारे

वग़ैरह के सरंजाम में और खाने पीने में ख़र्च होता है और शोर गुल भीड़ भाड़ में सतसंग और अन्तर बृत्ती अच्छी तरह नहीं हो सकती इस वास्ते तीर्थ का भी फल उलटा हो गया और तीर्थ मेले और तमाशे हो गये। इसी तरह जप तप भी सिर्फ़ टेक बाँध करके या लोक दिखाई के लिये किये जाते हैं और मनके रोकने का उस करतूत में ज़रा ख़याल नहीं किया जाता इसलिये उसमें भी बजाय फ़ायदे के और नुक़सान होता है क्योंकि बरसों जप करते गुज़र जाते हैं और जो हाल देखा जावे तो सिवाय इसके कि संसार की बासना और ज़ियादा हुई कोई परमार्थी अंग की तरक्क़ी नज़र नहीं आती और जो जीव कि प्रेमी और भोले हैं वह भी रोज़गारी और संसारियों के संग में अपना प्रेम खो

बैठते हैं और मुफ़ अपना वक़्त इन निष्फल करमों में खोते हैं और क्रिया जोग और अष्टाँग जोग का यह समा नहीं है न तो शरीर में वह ताक़त है कि जीव काष्टा की बरदाश्त कर सके और न वह करतूत पूरी उतरे क्योंकि उसके संजम बिल्कुल नहीं बन पड़ते हैं इस वास्ते उसका भी फल उलटा हो गया इसी तरह ब्रत वग़ैरह त्यौहार हो गये क्योंकि उस रोज़ बिशेषकर स्वाद के पदार्थ खाने में आते हैं और ज़ियादा तर आलस और निद्रा पैदा करते हैं भजन बंदगी का कुछ ज़िक्र भी नहीं होता है और अहंकार इन करमों का निहायत बढ़ता है जो कि कुल पापों का मूल पाप है इसी तरह और सब कर्मों का हाल भी देख लो और मन में बिचार कर समझ लो कि अब इस वक़्त में इन

कर्मों के करने से परमार्थ का फल कुछ भी नहीं मिलता है बल्कि मन और चित्त को ज़ियादा मैला और अहंकारी करते हैं और बाज़े जीव ज्ञान की पोथियाँ जिसको वेदान्त शास्त्र का अंग बताते हैं पढ़ते हैं और पढ़ कर उनका मनन करके अपने तईं ज्ञानी और ब्रह्म स्वरूप मानते हैं यह सब में बड़ा बिकार का मार्ग इस वक्त में प्रगट हुआ है पहिले तो यह कि जो ज्ञान आज कल फैल रहा है वह वेदान्त मत के मुआफ़िक़ नहीं है वेदान्त मत जब सही होवे कि उसके सर्ब अंग पूरे होवें याने पहिले कर्म और उपासना करके चार साधन हासिल करे तब ज्ञान का अधिकारी होवे सो देखने में आता है कि ज्ञान के ग्रन्थ जो अब जारी हुए हैं उन में कर्म और उपासना का कुछ

ज़िकर भी नहीं है और न आज कल के ज्ञानी कुछ कर्म और उपासना करते हैं फिर उनको ज्ञान किस तरह और कहाँ से हासिल हो सकता है उनका बचन है कि ज्ञान के ग्रन्थ पढ़ना और उनका बिचार और मनन करना यही कर्म और उपासना है तो क्या व्यास और बसिष्ठ और पिछले ज्ञानी जो कि जोग करके ज्ञान के पद को प्राप्त हुए नादान थे कि नाहक़ उन्होंने अपना वक्त ख़राब किया और मिहनतें उठाईं ऐसा ज्ञान जो कि आज कल जारी है निहायत आसान हर किसी को चंद रोज़ में हासिल हो सकता है क्योंकि दो चार ग्रन्थों का पढ़ना और समझना यही साधन और यही सिद्धान्त है और मन के निर्मल और निश्चल करने की कुछ ज़रूरत नहीं फिर ज्ञानी और अज्ञानी में क्या

भेद हुआ सिर्फ़ इतना कि यह ज्ञान की बातें ज़बान से कहता है पर बरताव में दोनों बराबर हैं तो बातों से जीव का उद्धार नहीं हो सकता है क्योंकि ज़बान के कहने से जड़ चेतन की गाँठ जो कि हमेशा से जोग करके खुलती रही है हरगिज़ नहीं खुलेगी और जो अपने मन में ख़ूब बिचार कर देखा जावे तो साफ़ मालूम होगा कि इस मत से कभी जीव का कल्यान नहीं हो सकता है और न मन और इन्द्री बस हो सकती हैं और जब कि पिछले जुगों के कर्म अब बन नहीं सकते हैं और अष्टाँग जोग भी नहीं हो सकता है तो ज्ञान जो इन कर्मों का फल था कैसे प्राप्त होगा इससे ज़ाहिर है कि जो कुछ आज कल के ज्ञानी कह रहे हैं और मान रहे हैं यह बाचक ज्ञान है जैसे कि कोई भूखा मिठाई

का ज़िकर करे और नाम उनके तफ़सील-वार लेवे पर इस ज़िकर करने से न सवाद ज़बान को हासिल होगा और न पेट भरेगा इस वास्ते सन्तों ने इस ज्ञान मत का कलियुग के वास्ते बिल्कुल निषेध किया है और जीव की मुक्ती और उद्धार सतगुरु और शब्द भक्ती से मुक़र्रर रक्खा है और अहंकारी और विद्यावान और रोज़गारी इस पर तर्क करेंगे और इसको सुन कर नाराज़ होंगे और जो सच्चे परमार्थी हैं इस बचन को ग़ौर करके समझेंगे और मानेंगे ॥

॥ फ़क़त ॥

फ़िहिरिस्त राधास्वामी मत की पुस्तकों की

॥ नागरी ॥

	क़ीमत
सार बचन छन्दबन्द (हुजूर महाराज के पाठ की पुस्तक से शुद्ध करके नया छपा है	... ३)
सार बचन वार्तिक	...१॥)
प्रेमबानी पहिला भाग	... २)
प्रेमबानी दूसरा "	... २)
प्रेमबानी तीसरा "	... २)
प्रेमबानी चौथा "	... १)
प्रेमपत्र पहिला भाग	... ३)
प्रेम पत्र दूसरा "	... ३)
प्रेमपत्र तीसरा "	... ३)
प्रेमपत्र चौथा "	... ३)
प्रेम पत्र पाँचवाँ "	... ३)
प्रेमपत्र छठा "	... २)
सार उपदेश	... ॥)
निज उपदेश	... ॥)
प्रेम उपदेश	... ॥)
राधास्वामी मत संदेश	... ॥)
राधास्वामी मत उपदेश	... ।=)
गुरु उपदेश	... -)

	क़ीमत
प्रश्नोत्तर संत मत	...।=)
बचन महात्माओं के	... ।)
जुगत प्रकाश	... ॥)
संत संग्रह भाग पहिला	... ।)
संत संग्रह भाग दूसरा	... ॥)
नाम माला	... ।)
बिनती व प्रार्थना	... ।)
प्रेम प्रकाश	... ।)
भेद बानी पहिला भाग	... ।-)
भेदबानी दूसरा "	... ।)
भेदबानी तीसरा "	... ।)॥
भेदबानी चौथा "	... ।-)
जीवन-चरित्र स्वामी जी महाराज	... ॥)
महाराज सा० के बचन पहिला भाग	॥)
" " दूसरा "	॥)
" " तीसरा "	॥)
" " चौथा "	॥)
" " पाँचवाँ "	॥)
हुज़ूर महाराज का जीवन चरित्र	॥=)

॥ उर्दू ॥

सार बचन नसर	... १)
सार उपदेश	... ॥)
निज उपदेश	... ॥)
राधास्वामी मत संदेश	... ॥)
केटिकिज़्म यानी सवाल व जवाब	... ।=)
सहज उपदेश	... ।=)

॥ बँगला ॥

सार उपदेश	... ॥)
राधास्वामी मत संदेश	....॥)

॥ अंग्रेज़ी ॥

राधास्वामी मत प्रकाश	...॥=)
डिस्कोर्स	...२॥)
सोलेस	... ॥)

पता—

राधास्वामी-सतसंग

इलाहाबाद